प्रथम सस्करण . 1997

जैन, गोकुल प्रसाद, एडवोकेट (1928-   )

सर्वाधिकार लेखक के अधीन

मूल्य. यू०एस० डालर 10 00

प्रकाशक ·

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

1506, हेमकुट टावर, 98, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110019

दूरभाष 6431954, 6419476

फैक्स 91-11-6461433

मुद्रक :

न्यू कॉनप्रिन्ट्स

एच-13, बाली नगरए नई दिल्ली-110015

प्रकाशकीय

हमे 'विदेशों मे जैनधर्म' पुस्तक पाठको के हाथो मे समर्पित करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है।

इसमे जैनधर्म और सस्कृति की गौरवशाली परम्परा का, जोकि भारत ही नही अपितु विश्व के कोने-कोने मे हजारों वर्ष पूर्व परिव्याप्त थी, स्वल्प विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे जैनधर्म की अपूर्व प्रगति, पुराकाल में जेन मन्दिरों के निर्माण, विशाल भव्य मूर्तियो की स्थापना, स्तूपो के निर्माण आदि के विषय मे दुर्लभ-अनुपलब्ध सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

इसके सुविज्ञ लेखक गोकुलप्रसाद जैन, जैन इतिहास के मर्मज्ञ विद्वांन हैं। आपने आदि तीर्थकर ऋषभदेव के विभिन्न जीवन प्रसंगों एवं अन्य विषयो पर अनेक शोधपूर्ण लेख लिखे हे जो कि समय-समय पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो एव शोध सस्थानो मे प्रस्तुत किये गये हैं। 'श्रमण सस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार' विषय पर 'श्री दिगम्बर जैन महासमिति पत्रिका' के विभिन्न अको में आपकी एक शोधपूर्ण लेखमाला भी प्रकाशित हुई थी, जिसका देश-विदेश मे भारी स्वागत हुआ।

अनेकान्त (वर्ष **50** किरण 1) जनवरी--मार्च **1997** मे प्रकाशित आपके 'पार्श्व -महावीर- बुद्ध युग के सोलह महाजनपद' लेख की विशेष सराहना की गई है।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा ने समय की माग और आवश्यकता के अनुरूप जैन इतिहास की वैज्ञानिक शोध-खोज एव जैन इतिहास के प्रणयन को सदैव प्रश्रय दिया है। इस क्षेत्र में महासभा की उपलब्धियॉ तो सर्व विदित ही है। इसी नीति के अनुरूप इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पुस्तक के प्रकाशन की योजना जल्दी-जल्दी मे बनी है। अत इसमे कमिया और त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है। आशा है सुधी पाठक और सुविज्ञ मनीषी इसकी कमियों की ओर ध्यान नहीं देगे।

निर्मल कुमार सेठी (अध्यक्ष)
श्रीभारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा दिल्ली

पूर्वाक्

आज से छह हजार वर्ष पहले उत्तर भारत का महानगर कालीबंगा सरस्वती महानदी के तट पर बसा हुआ था जो आत्ममार्गी अनुजनपद की राजधानी था। यहाँ जैनधर्म की महती प्रभावना थी। इसके अन्तर्गत राजस्थान का गगानगर जिला और उसके आसपास का क्षेत्र आता था। मिश्र, सुमेर और अन्य देशों के जहाज तटीय परिवहन मार्ग से भारत आते थे। वे चन्हुदडों, मोहनजोदडो और कालीबगा व्यापार सामग्री और यात्रियो को लाते ले जाते थे। भारत के इन देशों के साथ व्यापक व्यापारिक और सास्कृतिक सम्बन्ध थे। अनुजनपद के जैनाचार्य ओनसी थे। वे दर्शन, जैन तत्वार्थ ज्ञान, अर्थव्यवस्था और राजव्यवस्था आदि मे पारंगत थे।

इसी प्रकार, लगभग 5500 वर्ष पहले अफरीकी महाद्वीप के मिश्र क्षेत्र से भारत के सास्कृतिक सम्बन्ध थे और भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी पूर्ण विकसित अवस्था मे था। उद्योग, कृषि, नगर निर्माण, नहर निर्माण आदि उन्नत अवस्था मे थे। वहा समतामूलक आत्ममार्गी जनपद व्यवस्था विद्यमान थी और मनीस मिश्र की जनपद व्यवस्था पर आधारित पहला जनराजन था। मिश्र के प्राचीन शिलालेखों के अनुसार, मनीस का एक और नाम नरमेर भी मिलता है।

लगभग 4700 वर्ष पूर्व सुमेर क्षेत्र (सुमेरिया) आत्ममार्ग का अनुयायी था। वहा जैनधर्म की महती प्रभावना थी। जनपद पद्धति (चुनावी पद्धति) पर आधारित सुमेरिया का अति प्रसिद्ध सन्यासी जनराजन गिलगमेश था। वह लगभग 4700 वर्ष पहले सुमेर क्षेत्र से भारत आया था और भारत क्षेत्र के सबसे बडे जीवन्मुक्त सन्यासी जैन आचार्य उत्तमपीठ से आत्ममार्ग और आत्मसिद्धि का ज्ञान और आचार सीख कर गया था। सुमेर क्षेत्र के लोग तत्कालीन ज्रैनाचार्य उत्तमपीठ को उतनापिष्टिन के नाम से आज तक याद करते हैं।

गिलगमेश एक माह जीवन्मुक्त जैनाचार्य उत्तमपीठ के आश्रम में रहकर वापिस सुमेरिया चला गया और उसने वहा आत्ममार्ग का व्यापक

प्रचार किया। सुमेर क्षेत्र के प्राचीन साहित्य मे जीवन्मुक्त जैनाचार्य उत्तमपीठ और उनके आत्ममार्ग का काफी विस्तार से वर्णन मिलता है।

इस समय तक हिट्टाइटार्य और ईरानार्य क्रमश पश्चिमोत्तरी और पूर्वोत्तरी सीमाओं पर आ गये थे। धीरे-धीरे पूरा पश्चिमी एशिया हिट्टाइटार्य, मित्तनार्य और कैसाइटार्य गणो के अधिकार मे आ गयाथा। आत्म महायुग समाप्त हो गया था और सर्वत्र बर्बरगणों का साम्राज्य हो गया था। इनका एक वर्ग ब्रह्मार्यगण इन्द्र के सेनापतित्व मे भारत की ओर युद्धरत हुआ। भारतक्षेत्र की पश्चिमी सीमा पर ब्रह्मार्यगण और भारत जन के वीच देवासुर संग्राम हुआ। पहला महायुद्ध 1300 ई0 पूर्व से 1185 ईसा पूर्व के बीच लडा गया। दूसरा महायुद्ध 1200 ईसा पूर्व से 1400 ईसा पूर्व लडा गया जिसमे बहुत सी लडाइया समुद्र और नदियो पर भी लडी गई। देवासुर सग्राम का तीसरा महायुद्ध (आर्य-जैन महायुद्ध) 1140 ई0 पूर्व से 1100 ई0 पूर्व के बीच लडा गया जिसमे 1100 ईसा पूर्व मे आर्यगण उदीच्य (पश्चिम) भारत के सत्ताधारी और शासक बन गये। इस सुदीर्घ काल तक चले देवासुर (आर्य-जैन) सग्राम मे लाखो जैन धर्मी मारे गये और लाखो ही देश छोड कर सारे विश्व मे पलायन कर गये जिनक ओर-छोर का भी आज पता नही चलता।

यह है लगभग छह हजार वर्ष से भी पूर्व की जैन इतिहास की करुण कहानी। इसके बाद पार्श्वनाथ-महावीर युग मे जैन धर्म का पुनरुत्थान हुआ और देश में जैन-बहुल सोलह महाजनपद स्थापित हुए।

अपने सुदीर्घ इतिहास काल मे जैनधर्म भारत के अतिरिक्त ससार भर मे फैला। उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक प्राय प्रत्येक महाद्वीप और सभी देशो मे जैन धर्म का समस्त विश्व मे व्यापक प्रसार हुआ जिसका यहॉ साकेतिक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मै श्री सेठीजी का अत्यन्त कृतज्ञ और आभारी हू, जिन्होने मेरे इस स्वल्प शोधपरक प्रयास 'विदेशो मे जैन धर्म' का प्रकाशन कर मुझे देश, समाज और विद्वज्जनों की सेवा करने का अवसर दिया।

गोकुलप्रसाद जैन
233 राजधानी एनक्लेव
पीतमपुरा, दिल्ली-110034
फोन: 7185920, 7102296, 7102304

विषय-सूची

अध्याय 1

विश्व संस्कृति और भारतीय संस्कृति

एन्साइक्लोपीडिया ऑफ वर्ल्ड रिलीजन्स **(Encyclopaedia of World Religions)** के विश्वविश्रुत लेखक श्री कीथ के अनुसार, बेरिंग जलडमरूमध्य से लेकर ग्रीनलैण्ड तक सारे उत्तरी ध्रुव सागर के तटवर्ती क्षेत्रो मे कोई ऐसा स्थान नही है जहा प्राचीन श्रमण सस्कृति के अवशेष न मिलते हो। श्रमण सरकृति के अवशेष सोवियत यूनियन मे साइबेरिया के बेरिंग जलडमरूमध्य से फिनलैण्ड, लैपलैण्ड और ग्रीन लैण्ड तक फैले हुए है। वहा यह सस्कृति प्राचीन काल से निरन्तर न्यूनाधिक रूप से विद्यमान थी, परन्तु बाद मे ईसाई धर्म के प्रचारको ने इसे समूल नष्ट कर दिया। उस धर्म के शमन (श्रमण) सन्यासी या तो मारे गये है या उन्होंने आत्महत्या कर ली। साइबेरिया की तुर्क जातियो से चल कर यह धर्म तुर्किस्तान (टर्की) और मध्य एशिया के अन्य देशो-प्रदेशो मे भी फेला। दूसरी ओर इस सस्कृति ने मगोलिया, चीन तिब्बत और जापान को भी प्रभावित किया।

साइबेरिया के श्रमण सस्कृति के लोग बडी सख्या मे बेरिंग जलडमरूमध्य को पार करके उत्तरी अमेरिका मे पहुंचे और पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र के सहारे-सहारे आगे बढकर वे सारे उत्तरी अमेरिका मे फैल गये और वहा उन्होने व्यापक स्तर पर श्रमण सस्कृति का विकास और विस्तार किया।

अफ्रीका मे इस्लाम धर्म और आस्ट्रेलिया मे ईसाई धर्म के प्रसार के पहले वहां के प्राचीन जातीय धर्मो पर भी श्रमणो के आत्मज्ञान और विज्ञान का उन दोनो महाद्वीपो मे विकास और विस्तार हुआ था।

इस प्रकार वस्तुत. एशिया, अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया तथा युरोप श्रमण संस्कृति से प्रभावित रहे।

जैन धर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। जैन धर्म के प्रवर्तक ऋषभदेव

का जन्म स्वायंभुव मनु की पांचवीं पीढी मे हुआ था। स्वायंभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र, अग्नीध्र के पुत्र अजनाभ (नाभिराय) और नाभिराय के पुत्र ऋषभ थे[1]। आदिपुराण में मनु को ही कुलकर कहा गया है। ऋषभदेव के पिता अजनाभ (नाभिराय) अन्तिम कुलकर थे जिनके नाम से यह देश अजनाभवर्ष कहलाता था तथा तदुपरान्त ऋषभपुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत के नाम पर भारतवर्ष कहलाया।

जैन धर्म शाश्वत धर्म है और सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान रहा है। जैन साधु अति प्राचीन काल से ही समस्त पृथ्वी पर विद्यमान थे, जो संसार त्यागकर आत्मोदय के पवित्र उद्देश्य से एकान्त वनों और पर्वतों की गुफाओ में रहा करते थे[2]। जैन काल गणना के अनुसार तीर्थंकर ऋषभदेव के अस्तित्व का संकेत संख्यातीत वर्षों पूर्व मिलता है। भारतीय वाड्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में 141 ऋचाओ में ऋषभदेव की स्तुति और जीवनपरक उल्लेख मिलते हैं। अन्य तीनो वेदों, सभी उपनिषदों एव प्रायः सभी पुराणों और उपपुराणों आदि में भी ऋषभदेव के जीवन प्रसगो के उल्लेख प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। उनमे अर्हतों, वातरशना मुनियों, यतियो, व्रात्यों, विभिन्न तीर्थकरों तथा केशी ऋषभदेव सम्बंधी स्थल इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते है[3]। वस्तुतः उस समय श्रमण मुनियो के अनेक संघ विद्यमान थे जब वेदों की रचना हुई, एव पूर्व परम्परा से ही उस समय ऋषभदेव की वन्दना की जाती थी। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ऋषभदेव का समय ताम्रयुग के अन्त और कृषि युग के प्रारम्भ में लगभग 9000 ईसा पूर्व में माना है, किन्तु अन्य मनीषी इस कालगणना से सहमत नही है, तथा उनके अनुसार ऋषभदेव का समय लगभग 27000 ईसा पूर्व माना गया है। स्वायभुव मनु का समय प्राचेतस दक्ष से 43 परिवर्तयुग पूर्व (16000 वर्ष पूर्व) या लगभग 29000 वि पूर्व माना गया है। स्वायंभुव मनु वशिष्ठ प्रथम (29000 वि पूर्व) के समकालीन भी थे। अतः उनकी पाचवी पीढी के वंशज ऋषभदेव का समय तदनुरूप ही 27000 वि पूर्व ग्रहण किया जाना चाहिए।

ऋषभदेव और उनकी परम्परा में हुए 23 अन्य तीर्थंकरो द्वारा प्रवर्तित महान् श्रमण संस्कृति और सभ्यता का, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत मे प्रचार-प्रसार प्राग्वैदिक काल में ही हो गया

था। सर्वप्रथम तो यह संस्कृति भारत के अधिकांश भागों में फैली और तदुपरान्त वह भारत की सीमाओं को लांघकर विश्व के अन्य देशों में प्रचलित हुई और अन्ततोगत्वा उसका विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार हुआ तथा वह सस्कृति कालान्तर में यूरोप, रूस, मध्य एशिया, लघु एशिया, मैसोपोटामिया, मिश्र, अमेरिका, यूनान, बैबीलोनिया, सीरिया, सुमेरिया, चीन, मंगोलिया, उत्तरी और मध्य अफ्रीका, भूमध्य सागर, रोम, ईराक, अरबिया, इथोपिया, रोमानिया, स्वीडन, फिनलैंड, ब्रह्मदेश, थाईलैंड, जावा, सुमात्रा, श्रीलंका आदि संसार के सभी देशो में फैली तथा वह 4000 ईसा पूर्व से लेकर ईसा काल तक प्रचुरता से संसार भर मे विद्यमान रही। इस श्रमण संस्कृति और सभ्यता का उत्स भारत था। ऋषभदेव के प्रति श्रमण और वैदिक संस्कृतियों ने ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व ने अपनी श्रद्धा और सम्मान अभिव्यक्त किया है। अपोलो **(Appollo)** (सूर्यदेव), **Bull God** (बाउल, वृषदेव), तेशेब **(Tesheb)**, रेशेफ **(Reshef)** आदि नामो से वे विश्व के विभिन्न भागों मे पूजे गये। सार्वभौम वरेण्यता एव विश्वऐक्य की दृष्टि से यह उदाहरण संभवतः विश्व का अप्रतिम उदाहरण है।

लगभग 2000 ईसा पूर्व मे और आर्यो के आक्रमण के समय मध्य एशिया और ईरानी क्षेत्र में वृत्रो का निवास था। अराकोसया और जेद्रोसिया मे वृत्र, दास, दस्यु, पणि, यदु और तुर्वस निवास करते थे। इन जातियों के अतिरिक्त सरस्वती और दृशद्वती नदियों के दोआब क्षेत्र और उसके पूर्व और दक्षिण मे अनु, द्रह्यु, पुरु, मेद्, मत्स्य, अजस्, शिग्रु और यक्ष जातिया विद्यमान थीं। ये विभिन्न जातिया जैन धर्म (श्रमण धर्म) का पालन करती थीं।

आर्यों ने इन जातियों पर विजय प्राप्त की और 1400 ईसा पूर्व से लेकर 1100 ईसा पूर्व तक युद्धों मे उनके जनपद और महाजनपद नष्ट किए। मध्य एशिया की ही भाति आर्यगण अपने मृल निवास कश्यप सागर के उत्तरवर्ती क्षेत्र से लगभग 2500 ईसा पूर्व मे यूरोप की ओर गए थे। 1400 ईसा पूर्व से 1100 ईसा पूर्व तक भारत के मूल निवासी जैनों (श्रमणो) के साथ आर्यों के घोर सैनिक सघर्ष हुए जिनमें उन्ततोगत्वा भारत पर आर्यो की सैनिक विजय स्थापित हुई। इसके पूर्व आर्य लोग

यूनान और मध्य एशिया पर भी अपनी सैनिक विजय स्थापित कर चुके थे। आर्यों की विजय से इन क्षेत्रों की हजारों वर्ष पुरानी पूर्ण विकसित जैन संस्कृति और सभ्यता (श्रमण संस्कृति) सम्पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट हो गई। तीन-तीन आर्य-श्रमण (आर्य-जैन) दीर्घकालिक महायुद्ध हुए और अनेकानेक समर हुए।

प्रथम आर्य-श्रमण (आर्य-जैन) महायुद्ध 3000 ईसा पूर्व से 1185 ईसा पूर्व के मध्य लडा गया, जिसमें आर्यों की विजय हुई। द्वितीय आर्य-श्रमण (आर्य-जैन) महायुद्ध 1200 ईसा पूर्व से 1140 ईसा पूर्व के मध्य हुआ, जिसमें भूमि पर युद्धो के साथ-साथ नौसैनिक युद्ध भी हुए। ये नौसैनिक युद्ध तत्कालीन श्रमणतन्त्रीय पणि (जैन) जनपदों, अर्थात् मोहनजोदडो जनपद, अर्बुद जनपद, क्रिवि जनपद आदि अनेक पणि (जैन) जनपदों के साथ हुए। इनमे भी आक्रमणकारी आर्य सेनायें ही विजयी रहीं। तृतीय आर्य-श्रमण (आर्य-जैन) महासमर 1140 ईसा पूर्व से 1100 ईसा पूर्व तक चला। इस महासमर में दाशराज्ञ युद्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिसमें दस भारतीय तत्कालीन श्रमण (जैन) जनपदों ने, अर्थात् पूरू जनपद, अनु जनपद, द्रुह्यु जनपद, यदु जनपद, तुर्वस जनपद, वृचीवन्त जनपद, मत्स्य जनपद, अगन जनपद, शिग्रु जनपद और यक्ष जनपद, इन दस जैन धर्मावलम्बी जनपदों ने मिलकर भारतों के नाम से (जो ऋषभपुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर भारत कहलाते थे) संघ महाजनपद बनाकर विश्वामित्र के प्रधान सेनापतित्व मे सुदास, इन्द्र और आर्यों के महासेनापति वशिष्ठ के साथ युद्ध लडा था। उसमें भी अततोगत्वा आर्य सेनायें विजयी रहीं तथा 1100 ईसा पूर्व में आर्य लोग उदीच्य (पश्चिम) भारत के सत्ताधारी और शासक बन गये।[139 140]

अध्याय 2

भारतीय संस्कृति : प्रागार्य और प्राग्वैदिक काल

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से तथा लघु एशिया (एशिया माइनर) के पुरातत्त्व एवं मोहनजोदडो, हडप्पा, कालीबंगा आदि सिंधुघाटी सभ्यता के

केन्द्रो की खुदाई से प्राप्त सामग्री के आधार पर यह बात सुनिश्चित हो चुकी है कि वैदिक आर्यगण लघु एशिया और मध्य एशिया के देशो से त्रेतायुग के प्रारम्भ मे लगभग 3000 ईसा पूर्व मे, इलावर्त और उत्तर पश्चिम खैबर दर्रो से होकर सर्वप्रथम पंजाब मे आये और धीरे-धीरे आगे बढकर शेष भारत में फैल गये।

सिन्धुघाटी सभ्यता के केन्द्रों की खुदाई से अन्य प्रभूत सामग्री के साथ अर्हत् ऋषभ की कायोत्सर्ग मुद्रा मे मूर्तिया तथा सिर पर पांच फण वाली सुपार्श्वनाथ की पाषाण मूर्तियां तो मिली है किन्तु वैदिक यज्ञ-प्रधान सभ्यता की सामग्री — यज्ञ कुंड आदि प्राप्त नहीं हुए। इस पुरानी सभ्यता के आधार से जो पुरातत्त्ववेताओं के मत से ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष प्राचीन है, निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय तक भारत मे वैदिक ओर हिसक यागयज्ञों का कोई प्रचलन नहीं था। किन्तु अर्हतों की उपासना प्राग्वैदिक काल से इस देश में प्रचलित थी। वेदों में शिव नाम कहीं नहीं आया है। ऋषभ और रुद्र दोनों प्रतीक ऋषभ के ही हैं। धर्मानन्द कोसाबी[50] के अनुसार, परीक्षित और जनमेजय से पहले के समय में द्वापर युग मे हिंसा प्रधान यज्ञ-याग आदि का प्राधान्य नहीं था। परीक्षित और जनमेजय ने हिंसाप्रधान यज्ञयागादि को अधिक से अधिक वेग और उत्तेजन दिया। यह समय पार्श्वनाथ का है। इसका विरोध महावीर और बुद्ध ने किया।

बाइसवे तीर्थंकर अरिष्टनेमि कृष्ण के ताऊ समुद्र विजय के पुत्र थे। उनके समय में विवाह प्रसगों मे मास भक्षण की प्रथा थी जिसका उन्होंने घोर विरोध किया और इसी प्रसंग को लेकर वे ससार से विरक्त हो गये और अनगार बर गये। इतिहासज्ञों ने कृष्ण का समय 3000 ईसा पूर्व से भी पहले का माना है। समकालीन होने के नाते यही समय अरिष्टनेमि का था।

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार, "यह मानना युक्तियुक्त है कि श्रमण संस्था भारत मे आर्यो के आगमन से पूर्व विद्यमान थी और वैदिक धर्मानुयायी ब्राह्मण इस संस्था को हेय समझते थे।"[51]

वैदिक साहित्य यजुर्वेद आदि तथा पुराण साहित्य प्रभास पुराण आदि मे जैन धर्म के बाइसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि का स्तुतिगान किया गया

है।

अध्याय 3

सिन्ध, बलूचिस्तान, तक्षशिला, सौवीर, गान्धार आदि – पांच हजार वर्ष पूर्व

इस क्षेत्र के अनेकानेक जैन मन्दिर, स्तूप, महल, गढ आदि तो काल कवलित हो गए। किन्तु शेष को धर्मान्धो और बर्बर ब्रह्मार्यो ने भारत में प्रवेश करने पर धर्मान्धतावश तथा उत्पीडनार्थ उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। प्राचीन काल में, तृतीय सहस्राब्दि ईसा पूव में, बाइसवें जैन तीर्थकर अरिष्टनेमि के तीर्थ काल में, सिन्धु-घाटी सभ्यता अपने चरमोत्कर्ष पर थी। तक्षशिला, कश्यपमेरु (कश्मीर), पंजौर, सिंहपुर, कुलु-कागड़ा, सिन्धु-सौवीर, गान्धार, बलूचिस्तान आदि अनेकानेक स्थान जैन संस्कृति के रूप में बडी उन्नत अवस्था में थे। जैन देव मन्दिरों और भक्तजनों के दिव्य नादों से गगन गूंज उठता था। विद्वानों, निग्रन्थो, श्रमणो और श्रमणियों के विहार-स्थल और बड़े-बडे प्रतापी जैन राजा-महाराजाओं की और धनकुबेर श्रेष्ठियों की प्रभुता वाली पजाब की धरा सुसमृद्ध थी। पजाब के उन जैन महातीर्थो को तथा जैन-बहुल विस्तृत आबादी वाले नगरो और गावो को, जिनकी समृद्धि और आयात विश्वव्यापी वाणिज्य और व्यापार के कारण बहुत विस्तृत था, विदेशी, आततायी, धर्मान्ध, आक्रमणकारी ब्रह्मार्यों ने नष्टभ्रष्ट और धाराशायी कर दिया। इसीलिए उनमें से अधिकाश विकराल काल के ग्रास बन चुके है। अनेकों जैन मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया, नगरों और गावों को उजाडकर जला दिया गया तथा वहां के निवासियो को पलायन करने पर विवश किया गया। अनेक जैन मन्दिरो को हिन्दू मन्दिरों और कालान्तर मे बौद्ध मन्दिरो मे बदल दिया गया। जैन मूर्तियो को आर्यधर्मियो ने अपने इष्ट देवो के रूप में बदल दिया और कालान्तर में मुसलमानों ने उन मन्दिरों को मस्जिदों के रूप मे परिवर्तित कर लिया। अनेकानेक मन्दिरो स जैन मूर्तियो को उठाकर नदियों, कुओं, तालाबों आदि में फेंक कर उन मन्दिरो पर अपने-अपने धर्मस्थानों के रूप मे अधिकार जमा लिया गया।

जैनों ने स्वभावतः मन्दिरों के साथ-साथ स्तूप भी बनवाये थे और अपनी पवित्र इमारतों के चारों ओर पत्थर के घेरे भी लगाये थे। जैन साहित्य में अनेक स्तूपों के होने के उल्लेख मिलते हैं। जैनाचार्य जिनदत्त सूरि के जैन स्तूपों में सुरक्षित जैन शास्त्र भंडारो में से कुछ जैन ग्रंथों के पाये जाने का भी उल्लेख मिलता है। जैन साहित्य में तक्षशिला, अष्टापद, हस्तिनापुर, सिंहपुर, गांधार, कश्मीर आदि में भी जैन स्तूपों का वर्णन मिलता है। मौर्य सम्राट सम्प्रति ने अपने पिता कुणाल के लिए तक्षशिला में एक विशाल जैन स्तूप बनवाया था। मथुरा का जैन स्तूप तो विश्व विख्यात था ही। चीनी बौद्ध यात्रियों फाहियान, हुएनसाग आदि ने अपनी यात्राओं के विवरणो में उनके समय मे जैन धर्म के इन भारत व्यापी स्तूपो को, धर्मान्धता के कारण अथवा अज्ञानतावश अशोक निर्मित बौद्ध स्तूप लिख दिया। यद्यपि सारे भारतवर्ष में सर्वत्र जैन मन्दिर और स्तूप विद्यमान थे तो भी उन बौद्ध यात्रियो के सारे यात्रा विवरणों मे जैन स्तूपों का विवरण नहीं मिलता। जहां-जहा इन चीनी यात्रियो ने जैन निर्ग्रन्थ श्रमणों की अधिकता बतलाई है और उन निर्ग्रंथो का जिन-स्तूपों तथा गुफाओं में उपासना करने का वर्णन किया है, उन्हे भी जैनो का होने का उल्लेख नहीं किया। यद्यपि यह बात स्पष्ट है कि जिन स्तूपों और गुफाओं में जैन निर्ग्रथ श्रमण निवास करते थे, वे अवश्य जैन स्तूप और जैन गुफायें होनी चाहिये।

कश्मीर नरेश सत्यप्रतिज्ञ अशोक[125] महान, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, मौर्य सम्राट सम्प्रति, सम्राट खारवेल, नवनन्द, कांगडा नरेश आदि अनेक प्रतापी जैन महात्मा और सम्राट हुए हैं जिनके समय में अनेक जैन गुफाओं, मन्दिरों, तीर्थों और स्तूपों के निर्माण के उल्लेख भारतीय साहित्य और शिलालेखों में भरे पड़े हैं। तो भी धर्मान्धता-वश इन बौद्ध यात्रियों ने किसी भी जैन स्तूप अथवा जैन गुफा आदि का उल्लेख नहीं किया तथा वे तो सभी जैन स्तूपों को बौद्ध स्तूप मान कर चले। कवि कल्हणकृत कश्मीर के इतिहास "राजतरंगिणी" में भी वहां के जैन नरेशों द्वारा अनेक जैन स्तूपों के निर्माण का वर्णन मिलता है। जैन आगमों में -- जैन शास्त्रों में तो जैन स्तूपों के निर्माण के उल्लेख अति प्राचीन काल से लेकर आज तक विद्यमान[125] हैं।

पाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्ताओ कनिघम आदि ने भी ऐसी स्तूपाकृतिये (घेरों) को हमेशा बौद्ध स्तूप कहा है। जहा कही भी उनको टूटे-फूटे स्तूप मिले तब भ्रमवश यही समझा गया कि उस स्थान का सम्बन्ध बौद्धो से है। 1897 ईसवी मे बुहलर ने मथुरा के जैन स्तूप का पता लगा लिया था। 1901 ईसवी में उनका इस विषय पर शोध-निबन्ध छपा, तब संभवतः सर्वप्रथम पुरातत्त्व जगत को यह ज्ञात हुआ कि बौद्धो के समान, बौद्ध काल के पहले से ही जैनों के स्तूप बहुलता से मौजूद थे जो हजारों वर्ष से विद्यमान थे।

स्तूप उल्टे कटोरे के आकार का होता है जो किसी महापुरूष के दाह-सस्कार के स्थान पर बनाया जाता[127] था या सिद्धों अथवा तीर्थंकरों की मूर्तियों और चरण-बिम्बों सहित उस विशेष आराध्यदेव की पूजा आराधना के लिए निर्मित किया जाता था। स्तूप मे तीर्थंकर और सिद्ध की प्रतिमा होने का स्पष्ट उल्लेख प्रसिद्ध जैन ग्रथ तिलोय-पण्णत्ति में मिलता है। जैन मन्दिरों के साथ ही इन स्तूपो की पूजा भी होती थी। जैन ग्रन्थो में कितने ही स्थलों पर तीर्थकरो की पूजा सम्बन्धी वर्णन आते हैं।[129] इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि जैन स्तूपो मे मूर्तिया होती थी और उनकी पूजा भी होती थी। जैनो से सम्बन्धित खुदाई का और उनके शिलालेखो आदि के वाचन का काम भारत मे नहीं के बराबर हुआ है। परन्तु मथुरा के कंकाली टीले का एक ज्वलन्त प्रमाण जैन स्तूप सम्बन्धी प्राप्त है। उसमें कितनी ही जैन मूर्तिया प्राप्त हुई है[130] जो ईसा पूर्व काल मे जैनो ने स्थापित की थीं।

अहिच्छत्रा में भी जैन स्तूप मिला है और उसमे जैन मूर्तियां भी मिली है। इसी प्रकार, मध्य प्रदेश में भी ईसा पूर्व 600 वर्ष प्राचीन जैन मूर्तियां और जैन स्तूप मिले हैं[131]।

जैनों के अनेक वास्तविक स्मारकों, मूर्तियो, मन्दिरों आदि को भ्रमवश बौद्धो आदि का मान लिया गया है। आज से लगभग 1800 वर्ष पूर्व सम्राट् कनिष्क ने भी एक बार एक जैन स्तूप को भूल से बौद्ध स्तूप समझ लिया था। किन्तु वस्तुतः सर कनिंघम ने तो जीवन भर इस प्रकार की भूलें की हैं। उसने कभी नहीं जान पाया कि जैनो ने भी बौद्धों से हजारों वर्ष पूर्व से या बौद्धों के समय में ही स्वभावतः सैकडों जैन स्तूप बनाये थे। वास्तव में मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और दक्षिण एशिया के विभिन्न देशो मे

हजारों जैन मन्दिर, मूर्तिया, इमारते, शिलालेख, स्तूप आदि, सम्पूर्ण हड़प्पा-मोहनजोदडो-कालीबंगा-सराज्म परिक्षेत्र के लगभग 250 से अधिक सिन्धु सभ्यता केन्द्रों में भूमि के नीचे दबे पडे हैं और शोध-खोज एवं खुदाई की प्रतीक्षा कर रहे है।

कामरूप प्रदेश (बंगलादेश, बिहार, उडीसा आदि), कश्मीर, भूटान, नेपाल, बरमा, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, काबुल, चीन, ईरान, ईराक, शकस्तान, तिब्बत, तुर्कीस्तान, लंका, सुमेरिया, बेबीलन आदि देशों में, प्राचीन काल मे सर्वत्र जैन धर्म का बोलबाला था। सातवी शती (विक्रम) में ही उन देशो मे जैनो की सख्या बहुत अधिक थी। 16वी-17वी शताब्दी (विक्रम) मे भी तुर्किस्तान, चीन आदि देशो मे जैन यात्री भारत से तीर्थ यात्रा करने के लिए या व्यापार के लिए जाते थे, जिनका प्रभूत वर्णन प्राप्त हुआ है। ये सब स्थान तब से विदेशियो की बर्बरता और धर्मान्धता के शिकार हो चुके हैं।

पूर्वी भारत और मागध क्षेत्र (कामरूप, बगाल, विहार, उडीसा आदि) मे हजारो वर्षों से जैन धर्म और मागध विद्या का प्रचार, प्रभाव और प्रसार रहा है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र का आदि धर्म (मूल धर्म) भी जैन धर्म ही रहा है।

उस युग में, पूर्वी भारत में मुख्यता इक्ष्वाकुवंशियो का निवास था जिनके वंशज दक्षिण पूर्व में मल्लिका, शाक्य, लिच्छिवि, काशी, कोशल, विदेह, मालव और अग थे। इनके अतिरिक्त भारत के मध्य क्षेत्र में कोलों, भीलों और गोंडों आदि का निवास था। दक्षिण भारत में प्रोटो-आस्ट्रेलाइड लोगो का निवास था। ये सभी जातियां भारत की उस युग की महान् ऐतिहासिक व्रात्य प्रजाति का ही भाग थीं। सिन्धुघाटी सभ्यता तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ के तीर्थकाल में 6000 ईसा पूर्व में नर्मदा नदी के कांठे से सिन्धु नदी की घाटी और उसके आगे फैली। उनकी उस युग की सभ्यता और सस्कृति वस्तुतः वही सस्कृति थी जिसे हम आज सिन्धु घाटी सभ्यता, हडप्पा और मोहनजोदडो संस्कृति के नाम से जानते हैं और जो आगे चलकर संसार के सभी महाद्वीपों के लगभग सभी देशो में फैली और भारत मे उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई थी और जो अब तक भारत के हड़प्पा (हर्यूपिया), मोहनजोदड़ो (दुर्योण, नन्दूर या मकरदेश), कालीबंगा आदि लगभग 200 विभिन्न स्थलों की और मध्य

एशिया के अनेक स्थलों की खुदाई से तथा सोवियत रूस से जेराब्सान नदी के तट पर सराज्म में हुई खुदाई से पूर्णतया उद्घाटित और उद्भाषित हो चुकी है[4]।

उस युग के भारत जनों ने जिस अति समृद्ध महान नागरिक सभ्यता का विकास किया था, उसके उज्जवल प्रतीक उस युग के भारत के हडप्पा, मोहनजोदडो और कालीबंगा तथा सोवियत रूस के सराज्म[5] जैसे नगर सभ्यता केन्द्र हैं[6]। उन्होंने कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, विदेश व्यापार आदि का पूर्ण विकास किया था। यह सभ्यता भारत से लेकर मध्य एशिया होती हुई सोवियत रूस के सराज्म क्षेत्र तक फैली हुई थी। उस युग में सिन्धु घाटी की बस्तियों का दक्षिणी तुर्कमानिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। खुदाई से प्राप्त सीलों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनके आराध्य दिगम्बर योगीश्वर ऋषभदेव थे जो पद्मसान और कायोत्सर्ग मुद्राधारी थे तथा सब जीवों के प्रति समताभावी थे। आराध्य देवों की मूर्तियों के सिर पर आध्यात्मिक उत्कृष्टता और गौरव का प्रतीक त्रिरत्न सूचक श्रृगकिरीट है। वे वृत्र या अहिनाग वंशी थे तथा शिश्नदेव या केशी वृषभदेव के उपासक थे, जैसा कि ऋग्वेद के केशी सूक्त तथा अन्य सन्दर्भों से विदित है। उनका धर्म व्रात्यधर्म था और उनका आराध्य एकव्रात्य था, जैसा कि अर्थववेद के व्रात्यकाड से स्पष्ट है। रुद्र भी व्रात्य थे, जैसा कि यजुर्वेद के रुद्राध्याय में आये "नमो व्रात्याय" से प्रकट है। शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद मे भी इसी सन्दर्भ में "व्रात" शब्द का प्रयोग हुआ है। ये व्रात्य भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम मे सर्वत्र विद्यमान थे। इक्ष्वाकु, मल्ल, लिच्छिवि, काशी, कोशल, विदेह, मागध और द्रविड आदि व्रात्यों के अन्तर्गत थे। ऋषभदेव के एक पुत्र का नाम द्रविड था जिसके नाम पर ही श्रमण धर्मी आत्ममार्गी द्रविडों का यह नाम पडा था। व्रात्य धर्म का मुख्य केन्द्र पूर्व भारत था। यह स्थिति प्रागार्य प्राग्वैदिक युग मे 4000 ईसा पूर्व मे अर्थात् सिन्धु सभ्यता के काल में विद्यमान थी। प्रागैतिहासिक काल के व्रात्यों और श्रमणों का प्रभाव अथर्ववेद में भी परिलक्षित है, जो ऋग्वेद से भी प्राचीन और सर्वप्रथम रचित वेद है।

भारत की ज्ञात सभ्यताओं में सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता सिन्धु सभ्यता मानी जाती है। उस काल की मुद्राओं पर उत्कीर्ण चित्रों से यह स्पष्ट है

कि सब कुछ त्याग कर वनों में निवास और तप करने वाले सन्यासियों, गोगियों और यतियों की परम्पराएं तब तक समाज में सुस्थापित हो चुकी थीं तथा समाज का पूज्य अंग बन चुकी थीं। इन मुद्राओं से प्रकट होने वाला धर्म और जीवन-शैली वेदों से प्राप्त आर्य धर्म और दर्शन से सर्वथा भिन्न है। इह-लोकपरक होने के कारण प्रवृत्तिपरक वैदिक उपासना और जीवन शैली तो वैदिक साहित्य में विस्तार से अभिलिखित हो गई, किन्तु इहैषणा रहित सर्वस्वत्यागियों की जीवन-शैली का, युद्धों में उनकी उत्तरोत्तर पराजय के कारण, मात्र उल्लेख ही हो पाया। वेदो के अन्तिम अशों, आरण्यकों और उपनिषदों में यह भेद उभर कर आया है। श्रमण शब्द का इस रूप मे उल्लेख भी पहले पहल वृहदारण्यक उपनिषद मे ही हुआ है और वहा इसका अर्थ कठोर तपस्वी हुआ है।

सिन्धुघाटी की श्रमणधर्मी व्रात्य-असुर-पणि-नाग-द्रविड-विधाधर सभ्यता ही मध्य एशिया की सुमेर, अस्सुर एव बाबुली सभ्यताओ की तथा नील घाटी की मिश्री सभ्यता की जननी और प्रेरक थी।

वस्तुतः आदि महापुरुष ऋषभदेव विश्व सस्कृति, सभ्यता और अध्यात्म के मानसरोवर हैं जिनसे संस्कृति और अध्यात्म की विविध धाराये प्रवर्तित हुई और विश्व भर मे पल्लवित, पुष्पित और सुफलित हुई। विश्व मे फैली प्राय. सभी अध्यात्म धाराये उन्हे या तो अपना आदि पुरुष मानती है या उनसे व्यापक रूप से प्रभावित है। वे सभी धर्मों के आदि पुरुष है। यही कारण है कि वे विविध धर्मों के उपास्य, सम्पूर्ण विश्व के विराट् पुरुष और निखिल विश्व के प्राचीनतम व्यवस्थाकार है। वैदिक सस्कृति और भारतीय जीवन का मूल सांस्कृतिक धरातल ऋषभदेव पर अवलम्बित है। भारत के आदिवासी भी उन्हे अपना धर्म देवता मानते है और अवधूत पथी भी ऋषभदेव को अपना अवतार मानते है। ऋषभदेव के ही एक पुत्र "द्रविड" को उत्तरकालीन द्रविडों का पूर्वज कहा जाता है। सम्राट भरत के पुत्र अर्ककीर्ति से सूर्यवंश, उनके भतीजे सोमयश से चन्द्रवंश तथा एक अन्य वशज से कुरुवंश चला।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा समेत सारे प्रजापति प्राचीन श्रमण तपस्वी ही थे और अथर्ववेद भी श्रमणों द्वारा दृष्ट मंत्र-संग्रह था, जो बाद मे वेदत्रयी तथा पुराणों में शामिल किया गया। सन्यास आश्रम तथा आत्मा

और मुक्ति का विचार भी श्रमण मुनियां एवं राजन्य क्षत्रियों द्वारा वैदिक धर्म से जुडा।

श्रमणो में असुर, नाग, सुर (देव), द्रविड, ऋक्ष, वानर आदि सभी शामिल थे। देव श्रमणों में ऋषभदेव और वरुणदेव सर्वोच्च हैं। योगशास्त्र के रचयिता पतंजलि मुनि का भी वैदिक श्रमणो मे अत्युच्च स्थान है। वाल्मीकी मुनि तथा व्यास मुनि तो वैदिक श्रमणों के महाकवि तथा महान् इतिहासकार ही थे। व्यास मुनि का तो वेदों तथा पुराणों के सम्पादक के नाते विश्व के धार्मिक इतिहास मे अनुपम स्थान है। ऋषभ के पौत्र (चक्रवर्ती सम्राट् भरत के पुत्र) मरीचि मुनि ऋषभ देव द्वारा प्रवर्त्तित श्रमण धर्म में दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि धर्म का कठोरता से पालन कर रहे थे, किन्तु कालान्तर मे वे उनके सघ से अलग हो गये, यद्यपि दर्शन और विचार में वे उनके निकट ही रहे। मरीचि से ही हिन्दू धर्म (सनातन धर्म) का प्रवर्त्तन हुआ जो उत्तरोत्तर फलता-फूलता गया और उसका भारत व्यापी प्रसार हो गया।

वैदिक सस्कृति की भिन्न-भिन्न मुनि परम्परायें श्रमण धर्म के आत्म ज्ञान, मुक्ति, अहिंसा-व्रत तथा तप के विचार और आचार से प्रभावित रही हैं।

अध्याय 4

श्रमणधर्मी पणि जाति का विश्व प्रव्रजन

पुरा काल के अध्ययन से प्रकट होता है कि ईसा पूर्व चौथी सहस्राब्दि के आरम्भ मे और उसके बाद महान पणि जाति ने गोलार्ध के सभी भागों में शांतिपूर्ण ऐतिहासिक प्रव्रजन किये। इस पणि जाति का अनेकशः स्पष्ट उल्लेख प्राचीनतम वैदिक ग्रन्थ ऋग्वेद की 51 ऋचाओं में, अथर्ववेद में एवं यजुर्वेद (बाजसनेयी संहिता) एव सम्पूर्ण वेदोत्तर साहित्य में हुआ है। ये पणि ऋग्वेदोक्त जैन व्यापारी भारत से गये थे तथा ये अत्यन्त साहसी नाविक, कुशल इंजीनियर और महान शिल्पी थे तथा उन्हे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्टीय व्यापार और वाणिज्य में बडा अनुभव और निपुणता प्राप्त थी।

वे उच्च शिक्षा प्राप्त और मेधावी थे तथा विश्व भर के महासागरों के स्वामी थे। उन्होंने ही तत्कालीन सम्पूर्ण सभ्य जगत् में ऋषभदेव प्रवर्तित संस्कृति और सभ्यता का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। नाग, ऋक्ष, यक्ष, बानर आदि अनेक कुलों में विभाजित यह पणि या विद्याधर या असुर जाति हिन्द महासागर मे फैले हुए विभिन्न देशों-प्रदेशो एवं द्वीपों मे शनैः शनैः फैल गई। बाद में विधाधर ही द्रविड कहलाये जिनके मानवों से घनिष्ट मैत्री और विवाह सम्बन्ध थे। विधाधरों ने मानवों के ज्ञान से लाभ उठाया तो मानवों ने विधाधरो के विज्ञान से।

तीर्थकर ऋषभदेव से इक्ष्वाकु वश का प्रारम्भ हुआ। उस समय अहि-जाति का निवास-क्षेत्र ईरान और पश्चिमी भारत था। अहि-जाति वस्तुत. इक्ष्वाकुवश की एक उपजाति थी। पणि भी अहि या वृत्रों से सम्बन्धित थे। उन्हें भी वेदो मे दस्यु और अनार्य कहा गया है।

वस्तुत: पणि लोग बडे समृद्ध, कुशल और शक्तिशाली थे। उन्होंने विश्व भर मे अपने राज्य स्थापित किए तथा राज महल और किले बनवाये। बल उनका प्रसिद्ध नेता था। उन्होंने विश्व भर में बडे-बडे नगर बसाये, सेनायें रखी तथा भारी आर्थिक शक्ति स्थापित की। उनके इन्द्र, अग्नि, सोम, बृहस्पति आदि से युद्ध हुए। उन्होने अपना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार साम्राज्य स्थापित किया तथा अनेक देशो पर शासन किया। उनका सम्बन्ध सुमेर, मिश्र, बेबीलोनिया, सुषा, उर, एलाम आदि के अतिरिक्त उत्तरी अफ्रीका, भूमध्य सागर, उत्तरी युरोप, उत्तरी एशिया और अमेरिका तक से था। पणि लोगों ने ही मध्य एशिया को सुमेर सभ्यता की स्थापना की। वे भारत के अहि या नाग वशी थे तथा उन्होंने ही 3000 ईसा पूर्व मे सुमेर, मिश्र, यूनान आदि में श्रमण सस्कृति का व्यापक विस्तार किया। उन्होंने ही ईसा पूर्व 3000 मे उत्तरी अफ्रीका में श्रमण संस्कृति का प्रचार प्रसार किया और उन्हीं के द्वारा भूमध्य सारग क्षेत्र तथा फिलिस्तीन में श्रमण संस्कृति का व्यापक प्रचार हुआ।

महाप्रलय के बाद एशिया के उरुक राजवंश (नागवंशी उरग राजवंश) का पचम शासक गिलगमेश (लगभग 3600 ईसा पूर्व) दीर्घकालिक यात्रा करके भारत में मोहनजोदड़ो (दिलमन-भारत) की जैन तीर्थ यात्रा के लिए गया था[7], जैसा कि उसके 3600 ईसा पूर्व के शिलालेख से प्रकट है।

वह श्रमण धर्म का अनुयायी था।

तीर्थयात्रा में उसने मोहनजोदडो (दिलमन-भारत) में जैन आचार्य उत्तनापिष्टिम के दर्शन किए थे जिन्होने उसे मुक्तिमार्ग (अहिंसा धर्म) का **उपदेश दिया था।** सुमेर जाति में उत्पन्न बाबुल के खिल्दियन सम्राट नेबुचेदनजर (प्रथम) ने रेवानगर (काठियावाड) के अधिपति यदुराज की भूमि द्वारका में आकर रैवताचल (गिरनार) के स्वामी नेमीनाथ की भक्ति की थी और उनकी सेवा मे दानपत्र अर्पित किया था। दानपत्र पर उक्त पश्चिमी एशियायी नरेश की मुद्रा भी अंकित है और उसका काल लगभग 1140 ईसा पूर्व है।[8]

प्रभासपत्तन से भूमि उत्खनन स एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है जिसमें बेबीलन (मध्य एशिया) के राजा नेबुचन्द्र नैजर (प्रथम) के द्वारा सौराष्ट्र (गुजरात) के गिरिनार पर्वत पर स्थित नेमिनाथ के उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार का उल्लेख है। बेबीलन के राजा नेबु चन्द्र नेजर (प्रथम) का समय 1140 ईसापूर्व है जो पार्श्वनाथ के पहले का समय हुआ। नेबुचन्द्र नेजर (द्वितीय) का समय 604-561 ईसा पूर्व है जो महावीर के केवलज्ञान से पहले का समय है। नेबुचन्द्र नेजर ने अपने देश बेबीलन की उस आय को, जो नाविको के द्वारा कर से प्राप्त होती थी, जूनागढ के गिरनार पर्वत पर स्थित अरिष्टनेमि की पूजा के लिए अर्पित किया था। इसस स्पष्ट है कि पार्श्वनाथ से भी पहले यह मन्दिर विद्यमान था तथा बेबीलन के राजा नेबुचद्र नेजर नें नेमीनाथ के गिरिनार स्थित जैन मन्दिर के नियमित पूजा प्रक्षाल के लिए राजकीय दान दिया था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि बेबीलन (मध्य एशिया) के राजपरिवार में भी जैन धर्म के प्रति श्रद्धा थी और मध्य एशिया के बेबीलन आदि महानगरो मे जैन धर्म का व्यापक प्रसार था। यह बात नेमीनाथ को भी ऐतिहासिक सिद्ध करती है।[52]

महान पणि नेता मेनेस के नेतृत्व मे कुशल नाविको और शिल्पियो के साथ, धार्मिक नेताओ का एक पणि दल 4000 ईसा पूर्व के मध्य मे मिश्र गया था। वह वहां का पहला फराओ (फारवा) शासक बना और उसने मिश्र मे मैम्फिस महानगर की नीव डाली थी। मेनेस ने स्वय स्वीकार किया था कि वह भारत का पणि था। मिश्र की प्रसिद्ध पुस्तक ***Manifestaion of Life*** मे श्रमण धर्म के सिद्धात निबद्ध हैं। मिश्रियो को आत्मा-अनात्मा के

स्वरूप का ज्ञान था जो उक्त पुस्तक के अध्याय 125 मे दिया गया है। तीर्थंकर मल्लिनाथ के तीर्थकाल में मेनेस के नेतृत्व में पणिदल भारत से मिश्र गया था और उसने वहा श्रमण धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। मेनेस का पुत्र थोथ (या तैत), महामाता अथारे, एमन, होरस और उसिरि या ओसिरिस भारत (पुन्ट) से मिश्र जाकर वहा के वासी बन गये थे। मिश्र की सस्कृति और सभ्यता का प्रदाता भारत देश था। सिन्धुघाटी सभ्यता की भाति प्राचीन मिश्र में प्रारम्भिक राजवशो के समय की दोनो हाथ लटकाये देहोत्सर्ग निस्सग भाव मे खडी श्रमण मूर्तिया मिलती हैं।

अध्याय 5

अमेरिका में श्रमण धर्म

अमेरिका में लगभग 2000 ईसा पूर्व मे (आरतीक-पूर्व युग में) सघपति जैन आचार्य क्वाजलकोटल के नेतृत्व मे प्रणि जाति के श्रमण सघ अमेरिका पहुचे और तत्पश्चात् सैकडो वर्षो तक श्रमण अमेरिका में जाकर बसते रहे, जैसा कि प्रसिद्ध अमेरिकी इतिहासकार वोटन ने लिखा है। ये लोग मध्य एशिया से पोलीनेशिया और प्रशान्त महासागर से होकर अमेरिका पहुंचे थे तथा अन्तर्राष्ट्रीय पणि (फिनिशयन) व्यापारी थे। ये ऋग्वेद मे वर्णित उन जैन पणि व्यापारियो के वशज थे जो कि भारत से मध्य एशिया मे जाकर बसे थे और उनका तत्कालीन सम्पूर्ण सभ्य जगत से व्यापार सम्बन्ध और उन देशो पर आधिपत्य था। इनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन और साम्राज्य था **(The world of Phoenesioss)**। ये अहि और नागवशी थे तथा ये लोग ही इन क्षेत्रो का शासन-प्रबन्ध भी चलाते थे। इनसे पूर्व भी हजारो वर्षो से भारत से गये द्रविड लोगो का उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका मे निवास था तथा निरन्तर सम्बन्ध बना हुआ था।

प्राचीन अमेरिका कला पर स्पष्ट और व्यापक श्रमण तथा मिनोअन सस्कृति का असर स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। इनके तत्कालीन धार्मिक रीतिरिवाजो और आचार-विचार और संस्कृति मे तथा भारतीय श्रमण

संस्कृति में अदभुत साम्य है तथा प्राचीन अमेरिकी संस्कृति पर इस क्याजलकोटल संस्कृति की व्यापक और स्पष्ट छाप दृष्टिगोचार होती है। मध्य अमेरिका मे आज भी अनेक स्थलों पर क्वांजलकोटल के स्मारक और चैत्य प्राप्त होते हैं। पणि लोग आत्मा की वास्तविक सत्ता में विश्वास करते थे तथा उन्हें आत्मा के पुनर्जन्म और सिद्धि में विश्वास था। उनकी श्रमण विद्या का आधार अहिसा, सत्य, अचौर्य, सुशील और अपरिग्रह थे। आरम्भिक लौहयुग के इन पणि व्यापारियो ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अभियानो के साथ अपने आत्म धर्म (श्रमण धर्म) का भी विश्वव्यापी प्रसार किया। तत्कालीन मैक्सिको के शासक भी जैन श्रमण संस्कृति के अनुयायी थे। अमेरिका की तत्कालीन मय, इन्का, अजटेक आदि अन्य सभ्यताये ईसा काल के बाद की है और सभी पर श्रमण सस्कृति का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वहां के अजटेक लोग वास्तव मे आस्तीक की संतान है और वे नागो, नहुषों, भर्गो आदि के साथ पोलीनेशिया के मार्ग से अमेरिका पहुचे थे। ये सभी नागवशी जैन श्रमण थे। अब इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिल चुके है कि लगभग 2000 ईसा पूर्व में विकसित हुई क्याजलकोटल संस्कृति की परम्परा में विकसित हुई परवर्ती मय, इन्का, आस्तीक (अजटेक) आदि सभी सभ्यताये श्रमण सस्कृति की पररूप है। मय सभ्यता की सर्वाधिक पूज्या और इष्ट देवमाता "माया" है जो भारतीय लक्ष्मी की भांति कमल धारण किये है और उसके प्रधान देवता आदि पुरुष (आदिनाथ) है। अजटेक तो आस्तीक की सतान ही है और सम्भवत जन्मेजय से सन्धि के पश्चात् श्रमण आस्तीको, नागो, नहुषों, और भर्गों को पोलीनेशिया के मार्ग से अमेरिका में ले गये थे। आज भी मैक्सिको के मूल निवासी नाग की पूजा करते हैं और वे श्रमण धर्मी नागवंशियो की सन्तान है। भारत की भांति उनकी पूर्ण विकसित सन्यास परम्परा है। आस्तीक (अजटेक) अपने पुरोहितो को "शमन" कहते थे जो श्रमण का ही रूपान्तर है।

अमेरिका में एक समय जैन धर्म का व्यापक प्रचार था। वहां जैन मन्दिरो के खण्डहर प्रचुरता से पाये जाते हैं। मैक्सिको के प्रशान्त महासागर तट पर जैना (JAINA) नामक एक विशाल द्वीप है जिसकी प्राचीन सस्कृति श्रमण संस्कृति के अनुरूप है। अमेरिका का पुरातत्त्व और

जैना द्वीप के पुरातात्त्विक अवशेष और पुरावस्तुयें भी यही प्रमाणित करती हैं। भारी भूकम्पों मे, प्रशान्त महासागर में लुप्त हुए लिमूरिया महाद्वीप तथा अतलान्तिक महासागर में लुप्त हुए एटलान्टा महाद्वीप भी इसी बात को प्रमाणित करते है तथा सुप्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार हेरोडेटस ने भी इसी तथ्य का प्रमाणन किया है। जैन तीर्थंकर नेमि की जन्मभूमि मिथिला के नाम पर अमेरिका मे राजधानी बनने का प्रमाण मिलता है।

शताब्दियों तक सारे ससार मे व्यापार के साथ-साथ इन पणि व्यापारियों ने ऋषभ प्रवर्तित श्रमण धर्म का मैसोपोटामिया, मिश्र, अमेरिका, सुमेर, युनान, उत्तरी अफ्रीका, भूमघ्य सागर, उत्तरी एशिया तथा यूरोप में व्यापक प्रचार-प्रसार किया। लगभग 4000 ईसा पूर्व मे जैन पणि व्यापारियो का उपर्युक्त व्यापार साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर था। प्राचीन कैस्पियाना, आर्मेनिया, अजर्बेजान आदि समस्त रूसी क्षेत्र में पणि व्यापारियो का प्रसार था। सोवियत रूस मे सराज्म नामक स्थान की हाल ही की खुदाई से भी यही बात प्रमाणित होती है। इस क्षेत्र मे ग्यारहवी शती मे ही ईसाई धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ तथा इससे पूर्व तक इस क्षेत्र मे प्राचीन संस्कृति ही विद्यमान रही तथा श्रमण धर्म फैला रहा। सोवियत रूस में ईसाई धर्म के प्रचार की प्रथम सहस्राब्दि भी हाल ही में मनाई गई।

अध्याय 6

फिनलैण्ड, एस्टोनिया, लटविया एवं लिथुआनिया

इन देशों के इतिहासकारो और बुद्धिजीवियो की खोजों के अनुसार, उनकी सस्कृति का स्रोत भारत था और उनके पूर्वज भारत से जाकर वहां बसे थे जिनमे जैन श्रमण एव जैन पणि व्यापारी आदि बड़ी संख्या में थें। उनके यहां संस्कृत एवं ऋग्वेद की बातें भी प्रचलित थी। उनके यहां सती प्रथा भी थी। वस्तुतः उनके पूर्वज गंगा के इलको से जाकर वहां बसे थे। लटविया के प्रमुख लेखक पादरी मलबरगीस ने 1856 में लिखा है कि लटविया, एस्टोनियां, लिथुएनियां और फिनलैण्ड वासियों के पूर्वज भारत से जाकर वहां बस गये थे। इनमें अधिकांश पणि व्यापारी थे जो जैन

धर्मावलम्बी थे। इनकी भाषाओं और भारत की प्राचीन भाषाओं में बड़ा साम्य है। इतिहास काल में इनका भारत से निरन्तर व्यापारिक सम्बन्ध बना रहा। उस काल में हिमालय पर्वत की इतनी ऊंचाई नहीं थी और वह केवल निचला पठार था। सुदूर उत्तरी ध्रुव तक भारत से सार्थवाहों, रथों काफिलों आदि का निरन्तर गमनागमन होता था।

कालान्तर में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण पणि व्यापार-साम्राज्य तो छिन्न-भिन्न हो गया किन्तु सांस्कृतिक स्थिति अपरिवर्तित बनी रही। वर्तमान फिनलैंड क्षेत्र में बसी पणि जाति के कारण इस क्षेत्र का नाम पणिलैंड (फिनलैंड) पडा प्रतीत होता है। इस लोगों ने सत्रहवी शताब्दी तक अपनी मूल संस्कृति को कायम रखा तथा सत्रहवी शताब्दी में ही फिनलैंड में ईसाई धर्म का प्रसार हुआ।

अध्याय 7

सोवियत गणराज्य संघ और पश्चिम एशियाई देशों में जैन संस्कृति का व्यापक प्रसार

कतिपय हस्तलिखित ग्रन्थो मे ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण मिल हैं कि अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, टर्की आदि देशो तथा सोवियत सघ के आजोब सागर से ओब की खाडी से भी उत्तर तक तथा लाटविया से उल्ताई के पश्चिमी छोर तक किसी काल मे जैन धर्म का व्यापक प्रसार था। इन प्रदेशो मे अनेक जैन मन्दिरो, जैन तीर्थंकरो की विशाल मूर्तियो, धर्म शास्त्रो तथा जैन मुनियों की विद्यमानता का उल्लेख[9] मिलता है। कतिपय व्यापारियो और पर्यटकों नें, जो इन्हीं दो-तीन शताब्दियों मे हुए है, इन विवरणो मे यह दावा किया है कि वे स्वय इन स्थानो की अनेक कष्ट सहन करके यात्रा कर आये हैं। ये विवरण आगरा निवासी तीर्थयात्री बुलाकीदास खत्री (1625 ई.) और अहमदाबाद के व्यापारी पद्मसिह के है तथा तीर्थमाला[10] मे भी उल्लिखित हैं। इन यात्रा विवरणो मे लाहौर, मुलतान, कन्धार, इस्फहान, खुरासान, इस्तम्बूल, बब्बर, तारातम्बोल, काबुल, परेसमान, रोम, सासता आदि का सविस्तार वर्णन है। इन सब नगरों में जैन संस्कृति

व्याप्त थी तथा एशिया के अन्य नगरों में भी जैन धर्म फैला हुआ था। इस्तम्बूल से पश्चिम में स्थित तारातंबोल से लगाकर लाट देश तक के विस्तृत क्षेत्र में जैनधर्मी जनता का निवास था। तारातम्बोल के निकट स्वर्णकांति नगरी में भी जैन धर्म की प्रभावना थी।

उक्त विवरणों के अनुसार, एशिया के अन्य अनेक नगरों में जैन प्रभावना होने की सूचना प्राप्त होती है तथा इस्तम्बूल से लगाकर लाटविया तक के विस्तृत क्षेत्र में जैनधर्मी जनता के विद्यमान होने की सूचना मिलती है। उन्हे यात्रा में तारातंबोल नगर में तीर्थंकर अजितनाथ का मन्दिर, शान्तिनाथ मन्दिर और चन्द्र प्रभु तीर्थ में हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह तथा जैन मुनि तथा स्थान-स्थान पर सोने-चांदी के अनेकों रत्न-जटित मन्दिर मिले थे जिनका उन्होंने विस्तार के साथ विवरण दिया है। बुलाकीदास के अनुसार, वहां का राजा जैन धर्मावलम्बी जयचन्द्र सूर था तथा प्रजा जैन धर्मानुयायी थी। यह नगर सिन्धु सागर नदी के किनारे स्थित था। इसके आसपास 700 से अधिक जैन मंदिर विद्यमान थे जिनके मध्य में आदीश्वर का मन्दिर था। इस्फहान तथा बाबुल, सीरस्तान आदि में भी जैन मन्दिर थे। यहा के निवासी जैन व्यापारी पणि और चोल थे। ये विवरण चौथी से छठी शताब्दी के हैं।

तारातबोल में जैन ग्रंथ "जबला-गबला" भी विद्यमान था तथा एक सरोवर के निकट शांतिनाथ का मन्दिर था। इस्तबूल से 600 कोस की दूरी पर स्थित एक सरोवर में अजितनाथ की विशाल मूर्ति तथा तलगपुर नगर मे 28 जैन मन्दिर थे। नवापुरी पट्टन में चन्द्रप्रभु का मन्दिर था। यहा से 300 कोस दूर तारातंबोल में अनेक जैन मन्दिर, जैन मूर्तियां, हस्तलिखित जैन ग्रन्थ एवं जैन मुनि विद्यमान थे। वास्तव में तारातंबोल किसी एक नगर का नाम नहीं है। ये इर्त्तिश नदी के किनारे बसे तारा और तोबोलस्क नाम के दो नगर हैं। तारा इर्त्तिश और इशिम के संगम पर बसा है और तोबोलस्क को ही सिन्धु सागर नदी कहा गया है। इन्हीं विवरणों में टुण्ड्रा प्रदेश, टांडारव, अल्ताई, लाटविया का भी उल्लेख है। अल्ताई में सोने की खानें थीं जहां भारत से जैन व्यापारी जाते थे तथा अल्ताई से लाटविया (बाल्टिक सागर) तक की जनता जैन धर्मावलम्बी थी।

तारातम्बोल में उस समय उपलब्ध जैन शास्त्र "जबला-गबला" उत्तरापथ

के जैन तीर्थों और नगरों की भौगोलिक स्थिति से सम्बन्धित रहा होगा, जिसे किन्हीं जैन विद्वानों ने तारातम्बोल में रहते हुए लिखा होगा। इस जैन शास्त्र के उपलब्ध होने पर इस भूभाग मे भारतीयों के प्रभाव से सम्बन्धित कई रहस्यों का उद्घाटन संभव है।

हाल ही में ताजिकिस्तान के पुरातत्त्वज्ञों ने रूस में जेराब्सान नदी के तट पर सराज्म में 6000 वर्ष पुराने व्यापक नगर-सभ्यता केन्द्र का उत्खनन किया है। यह सभ्यता मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की समकालीन विधाधर सभ्यता प्रतीत होती है जो रूस, सुमेरिया और बाबुल से लेकर समस्त उत्तरी और मध्य भारत तक सम्पूर्ण क्षेत्र मे फैली हुई थी। यहां के निवासी ताम्र का उत्खनन करते थे तथा अनाज की खेती करते थे और पत्थर के औजारों से मकान बनाकर रहते थे। उनकी अनाज रखने की खत्तिया थी। उनकी सभ्यता ताम्रयुगीन-कृषियुगीन सभ्यता थी। वे शुद्ध शाकाहारी थे जबकि उनके चारो और शिकारी जातियो का निवास था। सराज्म हडप्पा संस्कृति की समकालीन श्रमण संस्कृति का केन्द्र प्रतीत होता है तथा यह सस्कृति तत्कालीन बलूचिस्तान की सस्कृति से मिलती-जुलती है। उनका मैसोपोटामिया से लेकर सिन्धु-घाटी सभ्यता तक से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। ससार के पुरातत्त्वविज्ञ इसका आगे अध्ययन कर रहे हैं।

बेबीलोन से लेकर यूरोप तक जैन धर्म का व्यापक प्रभाव था। मध्य यूरोप, आस्ट्रिया और हंगरी में आये भूकम्प के कारण भूमि में एकाएक हुए परिवर्तनो से बुडापेस्ट नगर में एक बगीचे में भूमि से महावीर स्वामी की एक मूर्ति निकली थी। वहा जैन लोगो की अच्छी बस्तियां थी। सातवीं शती ईसा पूर्व में हुए यूनान के प्रसिद्ध मनीषी जैन साधक और जैन सन्यासी थे। यूरोप और बेबीलोन दोनों का सम्बन्ध इय़ावाणी ऋष्यश्रृंग के उपाख्यान से भी सिद्ध होता है। मौलाना सुलेमान नदबी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "भारत और अरब के सम्बन्ध"[11] में लिखा है कि "संसार में पहले दो ही धर्म थे — एक समनियन और दूसरा कैल्डियन। समनियन लोग पूर्व के देशों में थे। खुरासान वाले इनको "शमनान" और "शमन" कहते है। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा प्रसंग में "श्रमणेरस" का उल्लेख किया है।[12]

अध्याय 8

चीन और मंगोलिया क्षेत्र में जैन धर्म

ऋषभदेव ने अष्टापद पर्वत पर जाकर ध्यान और तपस्या की थी। अष्टापद का अर्थ है आठ पर्वतों का समूह, जिसमें एक पर्वत प्रमुख होता है। प्राचीन भूगोल और प्राच्य विद्याशास्त्रियों ने सुमेरु या मेरु पर्वत का विस्तार से वर्णन किया है। यह मेरु पर्वत ही आज का पामीर पर्वत है। चीनी भाषा में "पा" का अर्थ होता है पर्वत तथा "मेरु" से "मीर" बन गया। इस प्रकार यह पामीर बना। पामीर का अन्य स्वरूप व लक्षण भी प्राच्य शास्त्रोक्त हैं। इससे पूर्व मे तत्कालीन विदेह अर्थात् चीन है। ऋषभ देव ने कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् अष्टापद क्षेत्र मे आत्ममार्ग का प्रचार किया। वे चीन, साइबेरिया, मंगोलिया, मध्य एशिया, यूनान आदि क्षेत्रो में प्रचारार्थ गये। उनसे प्रसूत धर्म ताओ धर्म कहलाया जिसने उस सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रभावित किया। "ताओ" शब्द का अर्थ होता है आत्ममार्ग।

चीन के महात्मा कन्फ्यूशियस ने भी मानव को प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा है कि आत्म-सस्कार मे ही मनुष्य को पूर्ण शक्ति लगानी चाहिए तथा आत्मदर्शन ही वस्तुतः विश्व दर्शन है।

ऋषभदेव ने कैलाश पर्वत पर तपस्या की थी। कैलाश पर्वत के निकट ही ऋषभ पर्वत है जिसका उल्लेख बाल्मीकि रामायण और अन्य रामायणों में हुआ है। जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ पर्वत का पूर्वनाम नाभि पर्वत था। चीन के प्रोफेसर तान यून शान ने लिखा है कि तीर्थंकरों ने अहिंसा धर्म का विश्व भर में प्रचार किया था। चीन की संस्कृति पर जैन संस्कृति का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। चीन पर ऋषभदेव के एक पुत्र का शासन था। जैन सन्तों ने चीन में अहिंसा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया था।

चीन के साथ और पश्चिम और उत्तर-पश्चिम के पठारों खोतान, काशगर आदि क्षेत्रों के साथ भारत के सम्बन्ध और भी प्राचीन हैं। अति प्राचीन काल में भी श्रमण सन्यासी वहां विहार करते थे और वहां उनके श्रमण संघ सुस्थापित हो चुके थे। ईसा पूर्व प्रथम शती में बौद्ध धर्म के

प्रवेश के पश्चात् तो श्रमण शैली समाज का प्रधान और पूज्य अग बन गई थी। आज भी बौद्धेतर समाज अपने पुरोहितों को "समन" ही कहता है। महावीर से पूर्व ही तीर्थंकर पार्श्वनाथ के तीर्थकाल में सातवीं शती ईसा पूर्व से भारत विश्व का धर्म केन्द्र बन गया था। हिमालय क्षेत्र, आक्सियाना, बैक्ट्रिया और कैस्पियाना में पहले से ही सर्वत्र श्रमण संस्कृति का प्रचार-प्रसार था। वस्तुतः चीन से केस्पियाना तक पहले ही श्रमण संस्कृति का प्रचार-प्रसार हो चुका था। श्रमण संस्कृति तो महावीर से 2200 वर्ष पूर्व ही आक्सियाना से हिमालय के उत्तर तक व्याप्त थी[13]।

चीन में ऐसे सन्तों की परम्परा विद्यमान थी जो लोक हितैषणा से ही कार्य करते थे और सादा जीवन बिताते थे। चीन और मंगोलिया में एक समय जैन धर्म का व्यापक प्रचार था। वहा जैन मन्दिरों के खण्डहर आज भी प्रचुरता से पाये जाते हैं।

मंगोलिया के भूगर्भ से अनेक जैन स्मारक निकले हैं तथा हाल ही मे मंगोलिया मे कई खंडित जैन मूर्तियां और जैन मन्दिरों के तोरण भूगर्भ से मिले है जिनका आंखों देखा पुरातात्त्विक विवरण बम्बई समाचार (गुजराती) के 4 अगस्त 1934 के अक में निकला था।

डॉ. जार्ल शारपेन्तियर ने अनेक प्राचीन ग्रंथों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि जापान के बौद्ध धर्म पर जेनमत (येन मत — प्राचीन कालिक जैनमत) की छाप पड़ी है। उदाहरणार्थ, योग में चित्तवृत्ति निरोध, आत्मानुभूति, समय और धार्मिक क्रियायें येन मत (जैन मत) की विशेषताये हैं, बौद्ध धर्म की नहीं। येन मत (जैन मत) पूर्व कालीन जैन धर्म प्रतीत होता है क्योंकि इसमें वर्णित स्वानुभूति ही सम्यग्दर्शन है और स्व-अनुशासन ही निश्चयतः चारित्र है। इसमें अनेक धर्मो के मिश्रण की संभावनायें इसके अनेकान्तवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं। इसका ध्यान जैन धर्म में मोक्ष या निर्वाण या आत्मानुभूति का साधन बताया गया है। जैन धर्म भी आत्मा को शुद्ध, बुद्ध मानता है और निर्वाण को ईश्वर कृपा पर निर्भर नहीं मानता। येनमत (जेनमत) के समान जैन धर्म भी कभी दरबारी नहीं रहा। दोनों का सम्बन्ध आत्माश्रयी है, बाह्यस्रोती नहीं। जेनमत (येनमत) बौद्ध धर्म से पूर्ववर्ती भगवान पार्श्वनाथ के समय में भी प्रचलित था। इसमें वीतरागता और स्वानुभूति को [illegible] स्थान प्राप्त है। वस्तुतः दोनों के

सिद्धान्त समान है।

सहस्रों वर्ष पूर्व जैन साधु और प्रचारक विश्वभर मे गये। विशेषकर एशियाई देशों में उन्हें अधिक सफलता मिली। चक्रवर्ती सम्राट भरत, मौर्य सम्राट चन्द्र गुप्त, मौर्य सम्राट सम्प्रति, सम्राट खाखेल आदि जैन शासकों के काल में इस प्रकार के विश्वव्यापी प्रयास किए गए। बौद्ध प्रचारक तो इन क्षेत्रों मे धर्म प्रचार के लिए बाद मे पहुचे तथा उनके हजारों वर्ष पूर्व से इन क्षेत्र में जैन धर्म का ही प्रसार था।

अध्याय 9

चीनी बौद्ध साहित्य में ऋषभदेव

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के जापानी विद्वान् प्रोफेसर नाकामुरा ने चीनी भाषा के बौद्ध त्रिपिटक साहित्य का गम्भीर मथन किया है तथा उन्होने उसमे सर्वत्र स्थान-स्थान पर ऋषभदेव विषयक सन्दर्भो का विस्तार से चयन और उल्लेखन किया है। उनका कथन है कि बौद्ध धार्मिक ग्रन्थो के चीनी भाषा में जो रूपान्तरित संस्करण उपलब्ध है उनमे यत्र-तत्र जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विषयक उल्लेख मिलते है। ऋषभदेव के व्यक्तित्व से जापानी भी पूर्ण परिचित है। जापानी उन्हे "रोक् शव" ,त्वाँ।इद्ध के नाम से पुकारते है।

आर्यदेव द्वारा रचित "षट शास्त्र" के, जिसकी मूल संस्कृत प्रति लुप्त हो चुकी है, प्रथम अध्याय मे कपिल, उलूक (कणाद), ऋषभ आदि का उल्लेख हुआ है, तथा यह लिखा है कि ऋषभ के शिष्यगण निग्रन्थों के धर्मग्रन्थों का पाठ करते हैं। उसमे तपस्या, केशलुंचन आदि क्रियाओं का उल्लेख है। तैशो त्रिपिटक (भा. 33, पृष्ठ 168) में भी इसी प्रकार के उल्लेख हैं। चीन में इस बात की विवेचना करते हुए त्रिशास्त्र सम्प्रदाय के संस्थापक श्री चि-त्सङ्य (549-633 ईसवीं) ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि ऋषभ एक तपस्वी ऋषि हैं; हमारे पूर्व संचित कर्मों का फल तपस्या द्वारा समाप्त हो जाता है और सुख तुरत प्रकट होता है। उनके धर्मग्रंथ निग्रंथ सूत्र कहलाते है जिनमें हजारों कारिकायें है।

उपाय हृदय शास्त्र में ऋषभदेव के अनुयायियो के मूल सिद्धान्त चित्सङ्ग की समीक्षा के साथ प्रकाशित हुए थे जिसमें चित्सङ्ग ने लिखा है कि कपिल, उलूक आदि ऋषियों के मत ऋषभदेव धर्म की शाखायें हैं। तैशो त्रिपिटक (भा. 42, पृष्ठ 247) इस दृष्टि से दर्शनीय है। चित्सङ्ग ने स्वर्ण सप्तति टीका में ऋषभ द्वारा भाग्यहेतु वाद का भी उल्लेख किया है।

इन सब और अन्य सैकडों बौद्ध ग्रन्थों में ऋषभ के सन्दर्भ में पांच प्रकार के ज्ञान (श्रुत, मति, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान), चार कषायों, स्याद्वाद्, आठ कर्मों आदि जैन धर्म के तत्त्वो का विस्तार से उल्लेख हुआ है। सर्वत्र ऋषभ का उल्लेख "भगवत् ऋषभ" के रूप मे हुआ है।

यात्रा विवरणो के अनुसार, जिरगम देश और ढाकुल की प्रजा और राजा सब जैन धर्मानुयायी है। तातार, तिब्बत, कोरिया, महाचीन, खास चीन आदि में सैकडों विद्यामन्दिर है। कही-कहीं जैनधर्मी भी आबाद है। इस क्षेत्र में आठ तरह के जैनी है। खास चीन मे तुनावारे जाति के जैनी है। महाचीन में जांगडा जाति के जैनी थे।

चीन के जिरगमदेश, ढांकुल नगर मे राजा और प्रजा सबके धर्मानुयायी हैं। यहां की राजधानी ढांकुल नगर है। ये सब लोग तीर्थंकर की अवधिज्ञान की प्रतिमाओं का पूजन करते हैं। इन्हीं प्रतिमाओ की मनःपर्यय ज्ञान तथा केवल ज्ञान की भी पूजा करते हैं। इन क्षेत्रों मे कहीं-कही जैन धर्मानुयायी भी बडी संख्या में आबाद है।

पीकिंग नगर में तुनावारे जाति के जैनियों के 300 जैन मन्दिर हैं जो सब मन्दिर शिखरबंध है। इसमें जैन प्रतिमायें खड्गसन और पद्मासन में हैं। मन्दिरों में वनरचना बहुत है जो दीक्षा समय की सूचक है। यहा जैनों के पास जो आगम है वे चीनी लिपि में है।

कोरिया और जैन धर्म : यहा जैन धर्म का प्रचार रहा है। यहा सोनावारे जाति के जैनी हैं।

तातार देश में जैन धर्म : सागर नगर मे (यात्री विवरण के अनुसार) जैन मन्दिर पातके तथा घघेलवाल जाति के जैनियों के हैं। इनकी प्रतिमाओं का आकार साढे तीन गज ऊंचा और डेड गज चौडा है। सब

जिन बिम्ब चौथे काल (चौथे आरे) के अन्त समय के है। कुछ प्रतिमाओं के हाथ ऊपर उठे हुए हैं जो उपदेश मुद्रा में हैं।

मुंगार देश में जैन धर्म: यात्री विवरण के अनुसार, यहां बाघानारे जाति के जैनी हैं। इस नगर में जैनियो के 8000 घर हैं तथा 2000 बहुत सुन्दर जैन मन्दिर हैं। मन्दिरों के गुंबज कहीं तीन, कहीं पांच और कहीं सात हैं। एक-एक मन्दिर पर सौ-सौ, दो-दो सौ कलश विराजमान हैं। इन मन्दिरो में अरिहंत की माता (ऋषभदेव की माता) मरुदेवी के बिम्ब विराजते हैं। इन मन्दिरों में रत्नों और पुष्पों के वरसने के चिह्न छतों में अंकित हैं। तीर्थंकर के अपनी माता के गर्भ में आने के स्वप्नों के चित्र भी अकित हो रहे हैं। फूलों की शय्या पर माता लेट रही है। ये लोग गर्भावस्था (च्यवन कल्याणक) की पूजा करते हैं।

अध्याय 10

तिब्बत और जैन धर्म

यात्रा विवरण के अनुसार (एरूल नगर में) तिब्बत में जैनी राजा राज्य करता है। यहां के जैनी मावरे जाति के हैं। एरूल नगर में एक नदी के किनारे 20,000 जैन मन्दिर हैं। यहां सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ के जन्म, दीक्षा और निर्वाण के उत्सव के अवसरों पर बड़ी दूर-दूर से यात्री तीर्थयात्रा करने के लिए आते हैं। इस नदी के किनारे संगमरमर पर सुनहरे काम वाले पत्थरों का मेरुपर्वत बना हुआ है। यहा जन्म कल्याणक पर मेले लगते हैं।

तिब्बत में ही सोहना जाति के जैन भी हैं। तिब्बत में ही 80 कोस की दूरी पर दक्षिण दिशा में खिलवन नगर है। यहां के जैनी तीर्थंकर के दीक्षा समय के पूजक हैं। यहां नगर में 104 शिखरबन्द जैन मन्दिर हैं। ये सब मन्दिर रत्नजटित और मनोज्ञ हैं। यहां के वनों में तीस हजार जैन मन्दिर हैं। उनमें नन्दीश्वर द्वीप की रचना वाले 52 चैत्यालय भी हैं।

दक्षिण तिब्बत में हनुवर देश में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह कोस पर जैनों के अनेक नगर हैं जिनमें बहुत से जैन मन्दिर हैं। हनुवर देश के

राजा-प्रजा सब जैनी हैं।

इस सारे क्षेत्र में अत्यधिक जैन मन्दिर, श्रावक-श्राविकायें, साधु-साध्वियां तथा जैन राजागण हैं। इस बात के विश्वसतीय प्रमाण मिलते हैं कि ऋषभ की पूजा-मान्यता का मध्य एशिया, मिश्र, यूनान मे प्रचार फिनीशियनों द्वारा किया गया था। फिनीशियनों का भी भारत के साथ इतिहास के पूर्वकाल से ही सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्पर्क था तथा उनके पूर्वज विश्व व्यापार के लिए भारत से समय-समय पर जाते हुए जैन धर्म भी अपने साथ लेकर गये थे। विदेशो मे ऋषभ भूमध्यसागरवासियों द्वारा अनेक नामों से जाने जाते थे, जैसे ऋषभ, रेसेभ, अपोलो, रेशव, वली तथा बैल भगवान। फिनीशियन लोग ऋषभ की यूनानियों के अपोलो के नाम से पूजा करते थे। रेसेभ से तात्पर्य नाभि और मरुदेवी का पुत्र स्वीकार किया गया है। आरमीनियन निवासियो के ऋषभदेव निःसन्देह जैनियो के प्रथम तीर्थकर ऋषभ ही थे। सीरिया का नगर राषाफा है। सोवियत अर्मीनिया मे टेशावनी नामका एक नगर था। बेबीलोन का नगर इसबेकजूर ऋषभ नगर का अपभ्रश जान पडता है। फिनीशियनो के अतिरिक्त, अकेडिया, सुमेरिया और मैसोपोटामिया का भी सिन्धु नदी घाटी प्रदेश से सास्कृतिक और व्यापारिक-सम्पर्क था और वहां के लोग ऋषभ का धर्म अपने देशों मे ले गए।

इस बात के बहुत प्रमाण है कि यूनान और भारत मे समुद्री सम्पर्क था। यूनानी लेखको के अनुसार जब सिकन्दर भारत से यूनान लौटा था तब तक्षशिला के एक जैन मुनि कालीनोस या कल्याण विजय उसके साथ यूनान गये और अनेक वर्षो तक वे एथेन्स नगर मे रहे। उन्होने एथेन्स मे सल्लेखना ली। उनका समाधि स्थान एथेन्स मे पाया जाता है।

यूनान के तत्वज्ञान पर जैन तत्वज्ञान का व्यापक प्रभाव है। महान यूनानी तत्वज्ञानी पीरो (पियर्हो) ने जैन श्रमणो के पास रहकर तत्वज्ञान का अभ्यास किया था। तत्पश्चात् उसने-अपने सिद्धान्तो का यूनान मे प्रचार किया था। पुराने यूनानियो को ऐसे श्रमण मिले थे जो जैन धर्मानुयायी थे। वे इथोपिया और एबीसीनिया मे पहाड़ो और जंगलों में बिहार करते थे और जैन आश्रम बनाकर रहते थे। विश्वविश्रुत भारतीय इतिहास मनीषी पंडित सुन्दर लाल जी ने भी इन दोनों देशों का इसी

प्रकार का विवरण दिया है।

ईसा पूर्व 12वीं शताब्दी की एक कांसे की रिषम (रेषेभ) की मूर्ति इनकापी के निकट अलासिया-साइप्रस में मिली थी, जो तीर्थंकर ऋषभ के समान ही थी। ऋषभ की मूर्तियां मलेशिया, तुर्की में और इसबुक्जूर की यादगारों में हित्ती (हत्ती) देवताओ में प्रमुख देवताओं के रूप मे मिली है। सोवियत आर्मेनिया की खुदाई में एरीवान के निकट कारमीर ब्लूर टेशावानी के पुरातन नगर यूराटियन में कुछ मूर्तियां मिली हैं जिनमें एक कांसे की ऋषभ की मूर्ति भी है।

ऋषभदेव की तथा अन्य तीर्थकरो की मूर्तियां दूसरे देशों में भी मिली है, जिनके विषय में सचित्र लेख कुछ भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में छप-चुके हैं। इन देशों में जैन सिद्धान्त और ब्राह्मी लिपि स्वीकार की गई है। सिन्धुघाटी की लिपि फिलिस्तीन के यहूदियों की प्राचीन लिपि थी। मिश्र की प्राचीन हीरो लिफिक्स प्राचीन चीनी लिपि तथा सुमेरियन लिपि ब्राह्मी से मिलती जुलती थी। अमेरिका की कोलम्बस से पूर्व की सस्कृति का प्रारम्भ भारत से ही हुआ था जिनका पुरातत्त्व युरोप की चार प्रमुख प्राचीन सस्कृतियों से समानता रखता था। ये प्राचीन संस्कृतियां थीं अमेरिका मे, दक्षिण पश्चिम के प्यूबवों में, घाटियो वाले अजटेक में तथा मवेशी के ऊंचे भाग में। वहां के यूकाटन प्रायदीप की मय सस्कृति और पीरू की संस्कृति – ये सब प्राचीन मिश्र, मेसोपोटामियां और सिन्धुघाटी की संस्कृतियों से समानता रखती थीं।

टोकियो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर नाकामूरा को एक जैन सूत्र मिला था। इससे प्रमाणित होता है कि शताब्दियो पहले चीन में भी जैन धर्म प्रचलित था। भारतीय और युरोपीय धार्मिक इतिहास से इस बात के विश्वसनीय प्रमाण मिलने संभव हैं कि आर्हत धर्म दुनियां के अनेक भागों में मानव समाज का प्रमुख धर्म था।

विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार श्री भिक्खु चमन लाल ने अनेक वर्षों की शोध-खोज के बाद 20 जुलाई, 1975 के हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली में अनेक शोध लेख छपवाये थे जिनका सारतत्त्व इस प्रकार है[53]:–

"प्राचीनकाल में भारत सदियों तक बहुत अच्छे प्रकार के जहाज बनाता था जो प्रशान्त महासागर आदि में चला करते थे, और मैक्सिको,

दक्षिण अमेरिका, तथा दक्षिण पूर्व एशिया से भारत का सम्पर्क कराते थे। इससे उन देशों पर भारतीय संस्कृति का गहरा प्रभाव पडा। मैक्सिको में आज भी भारत की तरह चपाती, दाल, पेठे आदि बनाये जाते हैं। भारतीय देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियां वहां मिलती हैं और भारत के मन्दिरों की तरह वहा भी मन्दिर हैं। वहा भी जन्म-मरण पर भारत के रिवाजों के समान, मृतक के अग्निदाह का रिवाज है।"

श्री भिक्खु चमन लाल ने वहां 30 वर्ष व्यतीत किए और भारतीयों के वहां बस जाने के प्रमाण एकत्रित किए। यद्यपि उस देश मे हाथी और चीलें नहीं है तो भी वहां पत्थर पर उनके चित्रो की खुदाई भारतीय प्रभाव की साक्षी है।

ईसवी सन् 400 में चीनी यात्री फाह्यान भारत आकर वहां से 200 यात्रियो के बैठाने की क्षमता वाली नाव मे चीन वापिस गया था। भारत में बने हुए इतनी क्षमता वाले जहाज उन समुद्रों को पार करते थे। पेरिस (फ्रास) के म्यूजियम मे भी ऋषभदेव की एक सुन्दर मनोज्ञ कलाकृति विद्यमान है।

अध्याय 11

जापान और जैन धर्म

जापान मे भी प्राचीन काल मे श्रमण सस्कृति का व्यापक प्रचार था तथा स्थान-स्थान पर श्रमण संघ स्थापित थे। उनका भारत के साथ निरन्तर सम्पर्क बना रहता था। बाद में भारत से सम्पर्क टूट जाने पर इन जैन श्रमण साधुओं ने बौद्ध धर्म से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। चीन और जापान मे ये लोग आज भी जेन बौद्ध कहलाते है।

अध्याय 12

मध्य एशिया और दक्षिण एशिया

लेनिनग्राड स्थित पुरातत्व सरथान के प्रोफेसर यूरी जेड्नेप्रोहस्की ने 20

जून, 1967 को नई दिल्ली में एक पत्रकार सम्मेलन में कहा था कि भारत और मध्य एशिया के बीच सम्बन्ध लगभग एक लाख वर्ष पुराने हैं अर्थात् पाषाण काल से हैं तथा यह स्वाभाविक है कि जैन धर्म मध्य एशिया में फैला हुआ था[14]।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासवेत्ता श्री जे.ए. दुबै ने लिखा है कि "एक समय था जब जैन धर्म का कश्यप सागर से लेकर कामचटका की खाड़ी तक खूब प्रचार-प्रसार हुआ था। न केवल यह बल्कि जैन धर्म के अनुयायी यूरोप और अफ्रीका तक में विद्यमान थे"।[15]

इसी प्रकार, मेजर जनरल जे.जी.आर. फरलॉग ने लिखा है कि "आक्सियाना, कैस्पिया, बल्ख और समरकन्द नगर जैन धर्म के आरम्भिक केन्द्र थे"।[16]

सीरिया के अमुर्रू प्रान्त मे एक नगर का नाम रेशेफ था जिसका उल्लेख मरिजातीय नरेश जिम्रेलिन (2730-2700 ईसा पूर्व) के लेख में हुआ है।[136] सोवियत आर्मीनिया में तेशबनी नामक प्राचीन नगर है। प्रोफेसर एम. एस. रामस्वामी आयगर के अनुसार, जैन मुनि-संत ग्रीस, रोम, नार्वे मे भी विहार करते थे।[137] श्री जान लिंगटन् आर्किटेक्ट एव लेखक, नार्वे के अनुसार[138] नार्वे म्यूजियम में ऋषभदेव की मूर्तियां हैं जिनके कधो पर केश है, वे नग्न है और खड्गासन है। नार्वे के सिक्कों पर जैन तीर्थकरों के चिह्न मिलते हैं। तर्जिकिस्तन में सराज्म के पुरातात्विक उत्खनन में पंचमार्क सिक्को तथा सीलो पर नग्न मुद्राये बनी है जोकि सिन्धु घाटी सभ्यता के सदृश हैं। आस्ट्रिया के बुडापोस्ट नगर मे ऋषभ की मूर्ति एवं भगवान महावीर की मूर्ति भूगर्भ से मिली है।[138]

ऋषभदेव ने बहली (बैक्ट्रिया, बलख), अडबइल्ला (अटक प्रदेश), यवन (यूनान), सुवर्ण भूमि (सुमात्रा), पण्हव (प्राचीन पार्थिया-वर्तमान ईराक का एक भाग) आदि देशो में विहार किया था। भगवान अरिष्टनेमि दक्षिणापथ के मलय देश में गये थे। जब द्वारिका दहन हुआ था तक भगवान अरिष्टनेमि पल्हव नामक अनार्य देश में थे।[17]

कर्नल टाड ने अपने "राजस्थान" नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी ग्रंथ में लिखा है कि प्राचीन काल में चार बुद्ध या मेधावी महापुरुष हुए हैं। इनमें पहले आदिनाथ या ऋषभदेव थे। दूसरे नेमीनाथ थे। ये नेमिनाथ ही स्केण्डिनेविया

निवासियों के प्रथम ओडिन तथा चीनियो के प्रथम फो नामक देवता थे।[18]

भगवान पॉंश्र्वनाथ ने कुरु, कौशल, काशी, सुम्ह, अवन्ती, पुण्ड्र, मालब, अंग, वंग, कलिंग, पांचाल, विदर्भ, मगध, मद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्णाटक, कोंकण, मेवाड, लाट, द्रविड, कश्मीर, कच्छ, शाक, पल्लव, वत्स, आभीर आदि देशों मे विहार किया था। दक्षिण में कर्णाटक, कोंकण, पल्लव आदि उस समय अनार्य देश माने जाते थे। शाक भी अनार्य प्रदेश था। शाक्य भूमि नेपाल की उपत्यका मे है। वहा भगवान पार्श्व के अनुयायी थे। भगवान बुद्ध का चाचा स्वय पार्श्वनाथ का श्रावक था।[19]

भगवान महावीर वज्रभूमि, सुम्हभूमि, दृढभूमि आदि अनेक अनार्य प्रदेशो मे गये थे। वे बगाल की पूर्वी सीमा तक गये थे तथा ईरान सीमा पर सिन्धु सौवीर भी गये थे और वहा के राजा उदयन को जैन धर्म मे दीक्षित किया था।[20]

ईसा से पूर्व ईराक, शाम और फिलिस्तीन मे जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु हजारों की संख्या मे चारो और फैले हुये थे। पश्चिमी एशिया, मिश्र, यूनान और इथोपिया के पहाडो और जगलों मे उन दिनो अगणित श्रमण साधु रहते थे जो अपने त्याग और अपनी विद्या के लिए प्रसिद्ध थे। ये साधु वस्त्रो तक का परित्याग किये हुए थे।[21] वान क्रेमर के अनुसार, मध्य पूर्व मे प्रचलित "समानिया" सम्प्रदाय श्रमण शब्द का अपभ्रश है। यूनानी लेखक मिश्र, एबीसीनिया और इथ्यूपिया मे दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व बताते हैं।

आर्द्र देश का राजकुमार आर्द्रक भगवान महावीर के सघ में प्रव्रजित हुआ था। अरबिस्तान के दक्षिण मे "अदन" बन्दरगाह के क्षेत्र को आर्द्र देश कहा जाता था। कुछ विद्वान इटली के एड्रियाटिक समुद्र के किनारे वाले क्षेत्र को आर्द्र मानते है। प्रो बील (1885 ए डी.) और सर हेनरी रालिसन के अनुसार, मध्य एशिया का बल्खनगर जैन संस्कृति का केन्द्र ..। मध्य एशिया के कैस्पियाना, अमन, समरकन्द, बल्ख आदि नगरों मे जैन धर्म प्रचलित था। मौर्य सम्राट सम्प्रति ने अरब और ईरान में जैन संस्कृति के केन्द्र स्थापित किये थे। जेम्स फर्ग्यूसन ने अपनी विश्वविश्रुत पुस्तक *"विश्व की दृष्टि में"* में (पृष्ठ 26 से 52) लिखा है कि ऋषभ की परम्परा अरब मे थी और अरब क्षेत्र मे स्थित पोदनपुर जैनधर्म का गढ था।[135]

अध्याय 13

पार्श्व-महावीर-बुद्ध युग के 16 महाजनपद (1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व)

पार्श्वनाथ-महावीर-बुद्ध युग मे भारत मे जैन सस्कृति का पुनरुद्धार और व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। उस काल मे निम्नलिखित सोलह महाजनपद विद्यमान थे जो हजारो वर्ष पुरानी श्रमण सस्कृति के पक्षधर और आश्रयदाता थे। इनमे जैन सस्कृति की व्यापक प्रभावना विद्यमान थी।

1 वज्जी सघ महाजनपद, 2 काशी संघ महाजनपद, 3. कोशल सघ महाजनपद, 4 मल्ल सघ महाजनपद, 5 अवन्ती सघ महाजनपद, 6. वत्स सघ महाजनपद, 7. शौरसेन सघ महाजनपद, 8. मगध संघ महाजनपद, 9 अश्वक संघ महाजनपद, 10 पाण्ड्य सघ महाजनपद, 11. सिहल संघ महाजनपद, 12 सिन्धु-सौवीर महाजनपद, 13. गान्धार सघ महाजनपद, 14 कम्बोज सघ महाजनपद, 15 अग संघ महाजनपद, 16. वग सघ महाजनपद,

इनके अतिरिक्त, भारत के शेष भागो मे विद्यमान कुरुसंघ जनपद, पाचाल सघ जनपद, चेदिसघ जनपद, मत्स्य सघ जनपद आदि अन्य जनपदो और गणपदो मे भी जैन सस्कृति का पर्याप्त प्रचार-प्रसार था।

ऋग्वेद तथा अन्य वेदो मे जनपदो का उल्लेख नही मिलता। यह तो चिरागत श्रमण परम्परा की विशिष्ट राजनैतिक एव सास्कृतिक-सामाजिक व्यवस्था थी जो पुराकाल के सुदीर्घ कालीन देवासुर संग्राम के कारण, नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी तथा द्वापर युग मे बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ के तीर्थकाल के अन्तिम चरण में इसी जनपद व्यवस्था की, श्रमण धर्म के पुनरुत्थान के साथ ही, पुनर्स्थापना एवं प्रत्यास्थापना हो रही थी। यह 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के तीर्थ काल के आरम्भ 10वीं-9वीं शती ईसा पूर्व का युग था। इसे उपनिषद-काल भी कहा जाता है।

सर्व प्रथम ब्राह्मण-ग्रन्थों में जनपदों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण काल में धीरे-धीरे इन जनपदों का महाजनपदों के रूप में प्रत्यास्थापन और

पूर्ण विकास होता चला गया। डा. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, महाजनपदों का युग 1000 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक रहा। वे वस्तुतः राजनैतिक, सास्कृतिक और आर्थिक जीवन की इकाई बन गये थे। इनकी संख्या घटती-बढती रही है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 22 जनपदों का उल्लेख आया है। महावस्तु में केवल सात जनपदों का वर्णन है। बाद में आपसी संघर्ष और साम्राज्यवादी प्रवृति के कारण जनपदो की संख्या कम होने लगी थी। बडे-बडे जनपदों ने छोटे-छोटे जनपदों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था और इस प्रकार महाजनपदों का उद्‌विकास हुआ।

पार्श्व-महावीर-बुद्ध युग में 16 महाजनपद विद्यमान थे। जैन भगवती सूत्र और बौद्ध अंगुत्तर निकाय में इनका विस्तृत विवरण मिलता है। डा. राजबली पाडेय ने भी इनका विवरण दिया है। वस्तुत· सम्पूर्ण भारत मे महाजनपद राज्यों की स्थापना हो चुकी थी जो मौर्य साम्राज्य की स्थापना तक चलती रही।

सिकन्दर के सैनिकों ने जैन धर्म को बैक्ट्रिया, औक्सियाना, कास्पियाना तथा अफगानिस्तान और भारत के बीच की सब घाटियो मे उन्नत रूप में फैला हुआ पाया था। जैनधर्म अत्यन्त प्राचीन काल से चीन से कास्पियाना तक उपदेशित होता था। जैन धर्म आक्सियाना और हिमालय के उत्तर मे महावीर से 2000 वर्ष पूर्व मौजूद था।[22]

अध्याय 14

मध्य पूर्व और जैन धर्म

महात्मा ईसा द्वारा प्रवर्तित ईसाई धर्म के आधारभूत तीन मौलिक तत्त्व है — विकृत यहूदी धर्म, विकृत मित्रवाद और यूनान के और्फिक मार्ग का आत्मतत्त्व। इनमे से मित्रवादी ऋग्वेदोक्त मित्र की धारा के अनुयायी हैं और इन पर ऋषभ के आत्म मार्ग का प्रभाव पड़ा। यूनान का और्फिक मार्ग तो पूर्णतया ऋषभ के आत्म मार्ग पर ही चला जिसका कि यूनान क्षेत्र और भूमध्य सागर क्षेत्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस मार्ग के अनुयायी पाइथागोरस

आदि थे। बाद में ये लोग जिम्नोसोफिस्ट कहलाये। पाइथागोरस का शिष्य प्लेटो था। इनके साहित्य में ऋषभ का उल्लेख रेशेफ के रूप में मिलता है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि पार्श्वनाथ की परम्परा में जिन पिहिताश्रव मुनि का उल्लेख मिलता है, वे ग्रीक विद्वान पाइथागोरस ही थे।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता पं. सुन्दरलाल ने अपनी पुस्तक "हजरत ईसा और ईसाई धर्म" में पृष्ठ 162 पर बतलाया है कि भारत में आकर हजरत ईसा बहुत समय तक जैन साधुओं के साथ रहे। जैन साधुओं से उन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा और आचार-विचार की मूल भावना प्राप्त की। हजरत ईसा ने जो पैलेस्टाइन मे आत्म-शुद्धि के लिए 40 दिन का उपवास किया था, वह पैलेस्टाइन के प्रख्यात यहूदी विद्वान जाजक्स के मतानुसार, भारत का पालीताना जैन क्षेत्र है। पालीताना मे ही उन्होंने जैन साधुओं से धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। इसी कारण ईसाई सिद्धान्तों पर जैन धर्म का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हजरत ईसा बहुत दिनों तक जैन साधुओं के शिष्य रहकर नेपाल चले गये, वहां से हिमालय पर्वत के मार्ग से ईरान चले आए। ईरान मे आकर उन्होंने धर्म-उपदेश प्रारम्भ किया। पालीताना के नामानुसार ईरान में पैलेस्टाइन नगर बसाया गया जिसे आज फिलिस्तीन भी कहते है। इसी नगर मे ईसा को फांसी दी गई थी।

अध्याय 15

ईरान (पर्शिया) और जैन धर्म

अहिंसा धर्म के प्रचारक जरथुस्त ने पर्शिया में सर्वत्र अहिंसा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया और अनेक देवालय भी स्थापित किए। प्रोफेसर ए. चक्रवर्ती के अनुसार ईरान मे जैन धर्म का प्रसार रहा है तथा उत्खनन में जैन प्रतिमायें निकलती रही हैं।

जरथुस्त (द्वितीय) अहिंसा धर्म से अत्यधिक प्रभावित थे तथा उन पर जैन धर्म का पूरा प्रभाव था। ए. चक्रवर्ती ने ईरान में जैन संस्कृति के प्रसार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। जरथुस्त के छन्दोवेद पर जैन संस्कृति का

व्यापक प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है।

अध्याय 16

यहूदी और जैन धर्म

प्रसिद्ध इतिहास लेखक मेजर जनरल जे.जी.आर. फर्लांग ने लिखा है कि अरस्तू[23] ने ईसवी सन् से 330 वर्ष पहले कहा है कि कालेसीरिया के निवासी यहूदी भारतीय तत्त्वज्ञानी थे जिनको पूर्व मे कालनी और इक्ष्वाकुवशी कहते थे। जुदिया में रहने के कारण ये यहूदी कहलाते है। ये प्राचीन यहूदी वास्तव मे भारतीय इक्ष्वाकुवंशी जैन थे जो जुदिया मे रहने के कारण यहूदी कहलाने लगे थे। इस प्रकार, यहूदी धर्म का मूल श्रोत भी जैन धर्म प्रतीत होता है।

अध्याय 17

तुर्किस्तान (टर्की) में जैन धर्म

इतिहासकारों के अनुसार तुर्किस्तान मे भारतीय सभ्यता के अनेकानेक चिहन मिले है। उत्खनन के समय 1700-1800 वर्ष पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ मिले है जो ताडपत्र, भोजपत्र, काष्ठ, चमडे आदि पर है, प्राकृत सस्कृत आदि मे है और अधिकतर खरोष्ठी लिपि में हैं। इन ग्रन्थो को जापानी, जर्मन, फ्रासीसी और अग्रेज लोग अपने-अपने देशो को ले गये हैं। प्राकृत भाषा के ग्रन्थ मिलने से ज्ञात होता है कि वे जैन धर्म पर ही होने चाहिए तथा इस देश मे जैन धर्म का व्यापक अस्तित्व रहा होगा।

इस्तम्बूल नगर से 570 कोस की दूरी पर स्थित तारातम्बोल नामक विशाल व्यापारिक नगर मे विक्रम की 17वीं शताब्दी तक बड़े-बडे विशाल जैन मन्दिर, जैन पौषधशालाये, उपाश्रय, लाखो की संख्या में जैन धर्मानुयायी, चतुर्विध श्रीसंघ तथा सघाधिपति जैनाचार्य अपने शिष्यो-प्रशिष्यो के मुनिसम्प्रदाय के साथ विद्यमान थे। आचार्य का नाम युग-प्रधान उदयप्रभ सूरि था। वहां

का राजा और सारी प्रजा जैन धर्मानुयायी थी। समय-समय पर वहां अनेक देशों से जैन लोग तीर्थ-यात्राओं और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए जाते थे। भारत से वहां जाने वाले अनेक यात्रियों के उनके अपने यात्रा विवरणों सम्बन्धी हस्तलिखित पत्र भारत के अनेक जैन शास्त्र भंडारों में सुरक्षित हैं। उदाहरणार्थ, सम्राट शाहजहां के काल का विक्रम संवत् 1683 का तारातंबोल की यात्रा का ठाकुर बुलाकीदास का यात्राविवरण रूप नगर, दिल्ली के शान्तिनाथ जैन मन्दिर के शास्त्र भंडार में मौजूद है।

चीनी तुर्किस्तान से भी अनेक स्थानों के प्राचीन चित्र मिले हैं। उनमे जैन धर्म से सम्बन्ध रखने वाली धटनायें भी चित्रित है।

अध्याय 18

यूनान में जैन धर्म

यूनान मे भी सभ्यता का विकास श्रमण सस्कृति की प्रगति के साथ-साथ लगभग 1500 ईसा पूर्व में प्रारम्भ हुआ। वहां भी लोकहितैषी श्रमण सन्तों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है जो कर्मकाण्ड से दूर रहकर सरल जीवन-यापन का उपदेश देते थे। इसी समय वर्तमान तुर्की और उससे दक्षिण में लेबनान और सीरिया मे हत्ती और मितन्नी सभ्यतायें विकसित हो रही थीं। इन दोनो सभ्यताओं की तत्कालीन भारतीय सभ्यता से गहरी समानता थी। दोनो के आराध्य देव तक समान थे। ये वस्तुत: जैन श्रमण सभ्यतायें ही थीं। दोनो में पुराहितों और सन्यासियो की सुस्थापित परम्पराये थीं। इनका सीधा प्रभाव यूनान की सभ्यता और उसकी उत्तराधिकारी रोम की सभ्यता पर भी पड़ा।

सिकन्दर 324 ईसा पूर्व में भारत से लौट गया और 323 ईसा पूव्र मे उसका निधन हुआ। उसके पश्चात् सैल्यूकस ने कब भारत पर आक्रमण किया इसका समाधान उडीसा के हाथी गुंफा-अभिलेख में है। मगध-यूनान संघर्ष 315 ईसा पूर्व में हुआ था और उस समय मगध पर बृहस्पति-मित्र (बिन्दुसार) का शासन था। हाथी गुंफा अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि वह संमर्द इतिहास प्रसिद्ध सन्धि में समाप्त हुआ। किन्तु

आश्चर्य यह है कि विश्वप्रसिद्ध जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के महामात्य एव गुरु चाणक्य का उल्लेख न तो मेगस्थनीज ने किया है और न खारवेल ने ही।

अध्याय 19

रोम और जैन धर्म

रोम की कर्मकांड तथा इहलोक प्रधान जीवन शैली में भारतीय श्रमण विचारधारा जमी न रह सकी। रोम मे सन्यास का प्रवेश बाद मे यहूदियों और ईसाइयों के माध्यम से हुआ। सातवीं-छठी शती ईसा पूर्व में ईरान के माध्यम से यूनान के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद से यूनान के दर्शन पर भारतीय श्रमण दर्शन का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होने लगा। साथ ही सन्यास की परम्परा भी वहां बल पकडती गई।

जैन श्रमण भी सुदूर देशो तक विहार करते थे। ई. पूर्व सन् 25 मे पाण्ड्य के राजा ने अगस्टस सीजर के दरबार में दूत भेजे थे। उनके साथ श्रमण भी यूनान गए थे।

श्री विशम्भरनाथ पांडे ने लिखा है — "इन (जैन) साधुओ के त्याग का प्रभाव यहूदी धर्मावलम्बियो पर विशेष रूप से पडा। इन आदर्शो का पालन करने वालो की, यहूदियों में एक खास जमात बन गई जो "ऐस्सिनी" कहलाती थी। इन लोगों ने यहूदी धर्म के कर्मकाडो का पालन त्याग दिया। ये बस्ती से दूर जंगलों में या पहाडो पर कुटी बनाकर रहते थे। जैन मुनियों की तरह अहिंसा को अपना खास धर्म मानते थे। उन्हे मांस खाने से बेहद परहेज था। वे कठोर और सयमी जीवन व्यतीत करते थे। पशुबलि का तीव्र विरोध करते थे और शारीरिक परिश्रम से ही जीवन यापन करते थे। वे अपरिग्रह के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। वे समस्त सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति समझते थे। मिश्र में इन्हीं तपस्वियों को "थेरापूते" कहा जाता था। "थेरापूते" का अर्थ "मौनी-अपरिग्रही" है।"

महावीर के महान् व्यक्तित्व की प्रसिद्धि भी दूर-दूर के देशों तक फैली। भारत के अनेक भागों में उन्होंने विहार और प्रचार किया था। ईरान

के राजकुमार अरदराक (अर्दरक) ने सुना तो वे भारत आये और महावीर का अपदेशामृत पान कर उनके शिष्य बन गये। ईरान में संभवतः उन्होंने ही अहिंसा धर्म का प्रचार किया था। महात्मा जरथुस्त्र के अनुयायियों ने भी पशु बलि प्रथा का अन्त कर दिया। शाह दारा महान् ने अशोक की तरह ही धर्मलेख उत्कीर्ण कराके अहिंसा धर्म का प्रचार किया था। ईरान में अहिंसा की एक परम्परा ही चल पड़ी। कलन्दर सम्प्रदाय के सूफी कट्टर अहिंसावादी हो गये हैं। महावीर सिन्धु-सौवीर के राजा उदयन को उपदेश देने के लिए सिन्धु-सौवीर गये थे और वह उनका परम शिष्य बन गया था। महावीर की अहिंसा का संदेश ईरान से आगे फिलिस्तीन, मिश्र और यूनान तक पहुंचा था। फिलिस्तीन के एस्सेन ,म्मदद्व लोग कट्टर अहिंसावादी थे। मिश्र में भी शकाहार को आश्रय दिया गया और यूनान में पाइथागोरस ने भारतीय अहिंसा और जैन धर्म के सन्देश को फैलाया। उसे सन् 81 ईस्वीं में भृगुकच्छ के श्रमणाचार्य ने एथेन्स जाकर ज्ञानसंपन्न किया था। जैन श्रमण भारत के बाहर दूर-दूर के देशों तक गये और उस समय सारे विश्व में अहिंसा का साम्राज्य स्थापित हो गया था। चीन में ताओ ने अहिसा पर जोर दिया। फिलिस्तीन मे एस्सेन लोगों ने अहिंसा को जीवन मे उतारा। यूनान मे पाइथागोरस ने जो अहिंसा की अजस्र धारा बहाई वह बराबर बहती रही। मिश्र मे भी प्राचीन काल से ही जैन साधुओं ने अहिंसा धर्म का प्रचार किया और वहा की जनता शाकाहारी हो गई थी। मिश्र में पैगम्बर मुहम्मद के समय अनेक जैन मन्दिर और देवालय विद्यमान थे।

मिश्र और यूनान मे ऋषभदेव की प्राचीन मूर्तिया मिली हैं। भारतीय सभ्यता के निर्माण में आदिकाल से ही जैनो का प्रमुख हाथ रहा है। जैनों में बडे-बडे व्यापारी और राजनीतिवेत्ता होते आये है तथा प्राचीन काल में जो विदेशों से विश्वव्यापी व्यापार प्रचलित था, उसमें जैनों का प्रमुख हाथ था।[24]

मगधाधिपति श्रेणिक बिम्बसार महावीर के परम उपासक थे। उन्होंने और उनके पुत्र महामंत्री अभय कुमार ने विदेशों मे व्यापक रूप से जैन धर्म का प्रचार किया तथा धर्म प्रचार का कार्य अपने राज्य के वैदेशिक विभाग द्वारा निष्पादित किया। राजपुत्र आर्द्रक कुमार महावीर स्वामी से दीक्षा लेकर आर्द्रक मुनि बने और गोशालक, बौद्धों, वेदान्तियों और तापसों

के साथ उनके महत्त्वपूर्ण सवाद हुए।

विविध तीर्थकल्प[26] (वि. 14 शतक) के अनुसार, तथा आचार्य हेमचन्द्र (परिशिष्ट पर्व) के अनुसार, सम्राट् सम्प्रति (ईसा पूर्व 232 से 190) ने अर्ध भारत पर अर्थात् भरतवर्ष के तीन खंडों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार, भरतवर्ष के दो विभाग हैं — दक्षिण भरत और उत्तर भरत। इनका विभाजन "वैयड्ढ पर्वत" (विजयार्ध पर्वत) के द्वारा होता है। इन दोनों के तीन-तीन खण्ड है[28]। वस्तुतः हिन्दूकुश, सुलेमान आदि वैयड्ढ पर्वत हैं[29]। उसके दक्षिण पूर्व[30] में बृहत्तर भारत के तीन खण्ड (अविभक्त हिन्दुस्तान) है तथा शेष तीन खण्ड उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व में हैं। मौर्य सम्राट सम्प्रति का दक्षिण भारत के तीन खण्डो पर प्रभुत्व स्थापित था (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति)। उसके राज्य की सीमा वैताढ्य पर्वत (अराकान पर्वतमाला तथा हिन्दूकुश पर्वत श्रेणी) तक थी (आचार्य हेमचन्द्र तथा वसुदेव हिण्डी)। सम्पूर्ण बृहत्तर भारत मे जैनधर्म और जैन सस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार था। सिहल, बर्बर (बेबीलोनिया), अगलोय, बलख (बलाया लोय), यवनद्वीप, आरबक (अरब प्रदेश), रोमक (रोम), अलसण्ड (अल्लसन्द-सिकन्दरिया), पिक्रवुर, कालमुख और योन (यूंनान) आदि प्रागैतिहासिक काल मे उत्तर भारंत के अंतर्गत आते थे जिनमें जैन संस्कृति की व्यापक प्रभावना थी। इसी प्रकार, बर्मा, लंका, मलाया, श्याम, कम्बोडिया, अनाम, जावा, बाली और बोर्नियो से सुदूरपूर्व के देश भी श्रमण संस्कृति के अंगभूत थे तथा भारत से सम्बद्ध थे। काशगर से चीन की सीमा तक, पूर्वी तुर्किस्तान के दक्षिणी प्रदेश-शैलदेश (काशगर), चोक्कुक (यारकन्द), खोतम्न (खोतान), चलन्द (शानशान) तथा उत्तरी प्रदेश-कुचि (कचार) और अग्निदेश (कराशहर) भी श्रमण सस्कृति से प्रभावित थे। इनमें खोतम्न और कुचि श्रमण भारत से विशेषतया सम्बद्ध थे।

अध्याय 20

मौर्य सम्राट और जैन धर्म का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार

महावीर निर्वाण (527 ईसा पूर्व) के 50 वर्ष बाद 477 ईसा पूर्व में मगध में नन्दवंश का राज्य स्थापित हुआ और 155 वर्ष पर्यन्त 322 ईसा पूर्व तक रहा। मौर्यवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के सहयोग से तक्षशिला (पंजाब) (पाकिस्तान) में अपना राज्य स्थापित किया। श्रेणिक बिम्बसार, नन्द और चन्द्रगुप्त मौर्य का अधिकार पजाब-सिन्धु पर भी था। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने गांधार में अपना राज्य स्थापित करने के बाद सन् 322 ईसा पूर्व में सन् 298 ईसा पूर्व तक अफगानिस्तान, गांधार-पंजाब से लेकर मगध देश तक राज्य किया। इसकी गांधार देश की राजधानी तक्षशिला थी। 24 वर्ष राज्य करने के बाद इसका देहान्त हो गया।

यूनान के महाप्रतापी सम्राट सिकन्दर ने 326 ईसा पूर्व में पंजाब पर चढ़ाई की। रावलपिंडी के उत्तर मे तक्षशिला (गांधार-बहली) के राजा को सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। सिकन्दर ने पश्चिमी कन्धार के राजा केकय देश के अवर्ण को रौंदते हुए जैन नेरश महाराजा पुरु को भी परास्त किया। किन्तु सिकन्दर के सैनिकों ने 327 ईसा पूर्व में और आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। भारत से लौटते समय 323 ईसा वर्ष पूर्व तक उसका देहान्त हो गया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन महामात्य चाणक्य की सहायता से उसका राज्य छीन लिया। मगध का सम्राट बन जाने के बाद चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार कर उसे देशव्यापी बनाया और उसे सुदृढ़ तथा संगठित किया।

सन् 305 ईसा पूर्व में मध्य एशिया के महान शक्तिशाली सम्राट यूनानी-सम्राट सेल्युकस निकेतर ने भारत पर भारी आक्रमण किया जिसमें सेल्युकस की पराजय हुई और उसके परिणाम स्वरूप सन्धि हुई जिसके अनुसार सम्पूर्ण पंजाब, सिन्ध, काबुल, कन्धार, बलोचिस्तान, कम्बोज, हिरात, किलत, लालबेला, पामीर, पदखशां पर भी चन्द्रगुप्त मौर्य का

अधिकार हो गया। इस प्रकार, प्रायः सम्पूर्ण भारत महादेश, एवं मध्य एशिया पर जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया। वस्तुतः चन्द्रगुप्त मौर्य 322 ईसा पूर्व में राज्यगद्दी पर बैठा और 298 ईसा पूर्व में अपनी मृत्युपर्यन्त उसने 22 वर्ष राज्य किया। उसके सम्पूर्ण साम्राज्य में देश विदेशों में प्रायः सर्वत्र जैन धर्म का व्यापक प्रचार था और जैन मन्दिर तथा जैन स्तूप विद्यमान थे।

सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय यूनानियों ने गाधार, तक्षशिला आदि जनपदों के नगरों में तथा उनके निकटवर्ती प्रदेशों एवं सम्पूर्ण पंजाब और सिन्ध में यत्र-तत्र-सर्वत्र हजारों निर्ग्रंथ श्रमणों को विहार करते हुए देखा था, जिनका उन्होंने जिम्नोसोफिस्ट, जिम्नटाई, जेनोई आदि नामों से उल्लेख किया है। इन शब्दों से आशय दिगम्बर एवं अन्य प्रादेशिक जैन मुनियों, जिनकल्पी, स्थविरकल्पी, अल्पवस्त्रधारी श्रमणों से है। सिन्धुघाटी में कुछ ऐसे ही जैन साधुओं का उन्होंने ओरेटाई के नाम से भी उल्लेख किया है। उपर्युक्त जैन साधुओं मे से कुछ को हिलावाई (वनवासी) नाम भी दिया गया है। श्वेताम्बर जैन साधुओं में एक वनवासी गच्छ भी था। वे प्रायः जंगल में रहते थे। इसी गच्छ के दो साधुओं मंडन और कल्याण विज्य ने स्वयं सम्राट सिकन्दर से भी साक्षात्कार किया था। सिकन्दर के आग्रह पर मुनि कल्याण विजय बाबुल भी गये थे, जहां उन्होंने समाधिमरण प्राप्त किया था। यूनानी लेखकों ने जैन मुनियों, ऋषभदेव, चक्रवर्ती सम्राट भरत आदि से सम्बन्धित अनुश्रुतियों का भी उल्लेख किया है। यूनानी सम्राट सिकन्दर के समय से पहले तथा बाद में भी गांधार, पंजाब, सिन्ध, तक्षशिला आदि जनपदों में सर्वत्र जैन धर्मानुयायी विद्यमान थे।

चन्द्रगुप्त दृढ़ जैन धर्मी था। बौद्ध साहित्य में उसे व्रात्य क्षत्रिय जाति का युवक सूचित किया गया है। व्रात्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद और अथर्ववेद में जैन धर्म के श्रमणों और आर्हतों के लिए किया गया है। यूनानी लेखकों ने व्रात्यों का उल्लेख वेरेटाई के नाम से किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने भी परिशिष्ट पर्व में चन्द्रगुप्त को जैन धर्मानुयायी ही कहा है। उसके द्वारा अनेक जैन मन्दिरों के निर्माण तथा जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं को स्थापित किये जाने के उल्लेख मिलते हैं। उसके समय की तीर्थंकर की

एक प्रतिमा लगभग तीन सौ वर्ष पहले गंगानी जैन तीर्थ में विराजमान थी ऐसा उल्लेख मिलता है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के त्रिरत्न चैत्य वृक्ष, दीक्षा वृक्ष आदि जैन सांस्कृतिक प्रतीकों से युक्त सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जीवन के अन्तिम समय में जैनाचार्य भद्रबाहु से दिगम्बर जैन मुनि की दीक्षा ग्रहण की थी और श्रवण वेलगोला (कर्नाटक) में भद्रबाहु के साथ तप किया था। किन्तु डा. फ्लीट तथा कतिपय अन्य विद्वानों ने इसकी प्रामाणिकता में सन्देह प्रकट किया है। विन्सेन्ट ए. स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *म्तसल ध्येजवतल व/ पदकप* के द्वितीय संस्करण में इस विषय की दिगम्बर जैनों की मान्यता का खण्डन किया है, किन्तु तृतीय संस्करण में विन्सेन्ट ए. स्मिथ ने इसकी सत्यता को स्वीकार कर लिया है।[63]

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में आचार्य यतिवृषभ ने अपने ग्रन्थ तिलोयपण्णति में लिखा है कि मुकुटधर राजाओं में सबसे अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त ने जैन मुनि की दीक्षा ली। उसके बाद किसी मुकुटधर राजा ने जैम मुनि की दीक्षा नहीं ली।[64]

आचार्य हरिषेण (विक्रमी संवत् 988) ने अपने कथाकोष नामक ग्रंथ में लिखा है कि भद्रबाहु को ज्ञात हो गया था कि यहां एक द्वादशवर्षीय भीषण दुर्भिक्ष पड़ने वाला है। इसलिए उन्होंने समस्त संघ को बुलाकर आदेश दिया कि वे दक्षिण देश चले आएं, मैं स्वयं यहीं ठहरूंगा।[65] तब चन्द्रगुप्त ने विरक्त होकर भद्रबाहु स्वामी से जिन दीक्षा ली। फिर चन्द्रगुप्त मुनि, जो दस पूर्वियों में प्रथम थे, विशाखाचार्य के नाम से जैन संघ के नायक हुए। भद्रबाहु की आज्ञा से वे संघ को दक्षिण के पुन्नाट देश में ले गए। इस प्रकार, रामल्य, स्थूलभद्र, भद्राचार्य अपने-अपने संघों सहित सिन्ध आदि देशों को भेज दिए गए और स्वयं भद्रबाहु स्वामी उज्जैन के भाद्रपद नामक स्थान पर रह गए, जहां उन्होंने समाधिमरण प्राप्त किया।[66]

आचार्य रत्ननन्दी ने भद्रबाहु चरित्र में स्वप्न माध्यम से इसी बात का समर्थन किया है। इसी प्रकार, ब्रह्मचारी मन्त्रेमिदत्त रचित आराधना कथाकोष में ऐसी ही कथा उल्लिखित है।[67] पुण्याश्रव कथाकोष में भी इसी से मिलता-जुलता विवरण मिलता है।[68]

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने परिशिष्ट-पर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन श्रावक तो लिखा है, किन्तु जैन साधु की दीक्षा लेकर दक्षिण जाने को कोई

उल्लेख नहीं किया है।[69]

श्रवणबेलगोल (मैसूर) से प्राप्त अनेक संस्कृत और कन्नड़ के शिलालेखों से भी इसी बात की पुष्टि होती है। इन शिलालेखो को प्रकाशित करते हुए, लेविस राइस ने लिखा है कि इस स्थान पर जैनों की आबादी श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वारा हुई और उसी स्थान पर उनकी मृत्यु भी हुई। अन्तिम समय में सम्राट अशोक का पितामह सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य उनकी सेवा करता था। ग्रीक इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त का नाम सैण्ड्राकोट्टस लिखा है।[70] चन्द्रगिरि पर्वत पर अनेक शिलालेख प्राप्त हुए है, उनसे इन्हीं बातों की पुष्टि होती है।[128] इन शिलालेखो में से मुख्य शिलालेख में द्वादश वर्ष के दुर्भिक्ष तथा उसके बाद उज्जैन से 12000 मुनियों के संघ का दक्षिण आगमन आदि सब बातें लिखी हैं।[71] ये शिलालेख विविध समयों के हैं। अतः प्राचीनता के कारण इन की प्रामाणिकता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि पुण्याश्रव कथाकोष में पटना के राजाओं के वृत्तान्त में पहले मौर्य सम्राट चन्द्रगुपत का इतिहास लिखा है, उसके अनुसार, श्रवणबेलगोला के साथ जिस चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध है, वह अशोक का पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य नही, बल्कि उसका पोता सम्प्रति मौर्य (चन्द्रगुप्त मौर्य द्वितीय) है। राजावली कथा में भी यही कथा लिखी है। यहां पर विचाराधीन चन्द्रगुप्त अशोक का पितामह न होकर उसका पौत्र है। वहां यह भी लिखा है कि चन्द्रगुप्त अपने पुत्र सिंहसेन को राज्य देकर भद्रबाहु के साथ जैन मुनि बन गया और दक्षिण की ओर चला गया।[72]

चन्द्रगुप्त नाम के कई सम्राट हुए हैं तथा भद्रबाहु भी अनेक हुए हैं जिन पर अन्य अनेक विद्वानों ने भी यथा प्रसंग सविस्तार प्रकाश डाला है।

मौर्य सम्राट अशोक के पोते सम्राट सम्प्रति (प्रिय दर्शन) ने वस्तुतः सम्राट अशोक की भांति देश-विदेशो मे अहिसा धर्म (जैन धर्म) का झडा लहराया था। यह प्रसिद्ध है कि मौर्य सम्राट सम्प्रति ने अपने जीवन काल में देश विदेशों में सवा लाख नए जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था; दो हजार धर्मशालाये बनवाई थी, ग्यारह हजार वापिकायें खुदवाई थीं; पक्के घाट बनवाये थे; सवा करोड़ जिन प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई थी तथा छत्तीस हजार जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार कराये थे। उसने

सर्वसाधारण प्रजा के लिए सात सौ दानशालों स्थापित कीं. और दो हजार धर्मशालायें बनवाई।

भारत के अतिरिक्त, सम्राट् सम्प्रति ने अरब देशों, ईरान, सिंहलद्वीप, रत्नद्वीप, खोतान, सुवर्णभूमि, फूनान, चम्पा, कम्बुज, यवद्वीप (जावा), स्वर्णद्वीप (सुमात्रा), बोर्नियो बाली आदि में जैन धर्म के प्रचारक भेजे थे तथा मौर्य साम्राज्य के वैदेशिक विभाग तथा राजदूतावासों की मार्फत जैन धर्म के प्रचार का कार्य व्यवस्थित और संचालित किया था।

सम्राट सम्प्रति के धर्म गुरु जैनाचार्य सुहस्ति (उज्जैन) थे जो 236 ईसा पूर्व में स्वर्गस्थ हुए। सम्प्रति ने अपने अधीन सब राजाओं, सामंतों आदि को आदेश दिया था कि वे अपने-अपने राज्यो में भी जैन मन्दिरों में अट्ठाई महोत्सव करें, सुविहित जैन श्रमणों को नमन करें तथा अपने देशों में जैन साधुओं को सब प्रकार की विहार की सुविधायें दें। उनको यह भी आदेश था कि वे स्वयं जैन धर्म स्वीकार करे और अपनी प्रजा को जैन धर्मी बनायें।[73] प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार,[74] सम्राट सम्प्रति ने अरब, तुर्किस्तान आदि यवन देशों में भी जैन सस्कृति के केन्द्र (सरस्थान) स्थापित किये थे। प्रोफेसर सत्यकेतु विद्यालंकार का कथन[75] है कि एक रात्रि सम्राट सम्प्रति के मन में यह विचार आया कि अनार्य देशों मे भी जैन धर्म का प्रचार हो और साधु-साध्वियां स्वच्छन्द रीति से सब देशों में विचरण करके सदा जैन धर्म का प्रचार व प्रसार कर सकें, अतः उसने अनार्य देशों में भी जैन प्रचारकों और जैन साधुओं को जैन धर्म के प्रचार के लिए भेजा। साधुओं ने राजकीय प्रभाव से शीघ्र ही वहां की जनता को जैन धर्म और जैन आचार-विचारों का अनुयायी बना लिया। इस प्रकार, अनार्य देशों को भी आर्य देश बना लिया गया।

तीर्थंकर महावीर से लेकर मौर्य सम्राट सम्प्रति के समय तक भारत में साढे पच्चीस आर्य देश थे जहां पर जैन धर्म का सर्वाधिक प्रभाव था। परन्तु आर्य देशों की सीमायें समय-समय पर बदलती रहती है। सिन्धु-सौवीर, गाधार और कैकय आदि प्राचीन काल में आर्य देश थे जो पाकिस्तान बन जाने पर अनार्य देश बन गए।

प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन[76] है कि मौर्य सम्राट सम्प्रति के समय में उत्तर-पश्चिम के अनार्य देशों में भी जैन धर्म के प्रचारक भेजे

गए और वहां जैन श्रमणों के लिए अनेक विहार, उपाश्रय आदि स्थापित किए गए। अशोक और सम्प्रति दोनों के कार्यों से भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति बन गई और आर्यावर्त की सीमाओं के बाहर सर्वत्र पहुंच गई। इसने असूर्यपश्या राजरानियों, राजकुमारियों, राजकुमारों और सामन्तों को भी जैन श्रमण-श्रमणियों के वेश में दूर-दूर के देशों में विहार कराकर चीन, ब्रह्मा, सीलोन (श्रीलंका), अफगानिस्तान, काबुल बिलोचिस्तान, नेपाल, भूटान, तुर्कीस्तान आदि में भी जैन धर्म का प्रचार कराया। अपने देश भारत में तो सम्राट सम्प्रति का अखण्ड साम्राज्य था ही।

अनेक विद्वानों का यह भी मत है कि अशोक के नाम से प्रचलित शिलालेखों में से अनेक शिलालेख सम्राट सम्प्रति द्वारा उत्कीर्ण कराये गये थे। अशोक को अपने पौत्र सम्प्रति से अनन्य स्नेह था। अतः जिन अभिलेखों में "देवानां प्रियरस पियदंस्सिन लाजा" (देवताओं के प्रिय प्रियदर्शिन राजा) द्वारा उनके अंकित कराये जाने का अभिलेख है, वे सम्राट अशोक के न होकर सम्राट सम्प्रति के होने चाहिए, क्योंकि "देवानांप्रिय" तो अशोक की स्वयं की उपाधि थी। अतएव सम्प्रति ने अपने लिए "देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिन राजा" उपाधि का प्रयोग किया है। विशेषकर जो अभिलेख जीव-हिंसा-निषेध और धर्मोत्सवों से सम्बन्धित है, उनका सम्बन्ध तो मौर्य सम्राट सम्प्रति से ही है।

मौर्य सम्राट सम्प्रति द्वारा धर्म राज्य के सर्वोच्च आदर्शों के अनुरूप राज्य स्थापित करने के प्रयत्नों के लिए, राजर्षि सम्राट सम्प्रति की तुलना, गौरव के उच्च शिखर पर आसीन इजराइल के सम्राट दाउद और सुलेमान के साथ की जा सकती है और धर्म को क्षुद्र स्थानीय सम्प्रदाय की स्थिति से उठाकर विश्व-धर्म बनाने के प्रयास के लिए ईसाई सम्राट कान्स्टेन्टाइन के साथ की जाती है। अपने दार्शनिक एव पवित्र विचारों के लिए जैन सम्राट सम्प्रति मौर्य की तुलना रोमन सम्राट मार्शल के साथ की जाती है। सम्प्रति की अपनी सीधीसरल पुनरुक्तिपूर्ण विज्ञप्तियों में क्रामवेल की शैली ध्वनित होती है, एवं अन्य अनेक बातों में सम्प्रति खलीफा अमर और मुगल सम्राट अकबर महान की याद दिलाता है। विश्व के सर्वकालीन महान सम्राटों की कोटि में सम्राट अशोक और सम्राट सम्प्रति भारतीय इतिहास के गौरव रूप हैं और रहेगे। जैन धर्म के साथ इन दोनों का ही

निकट और घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

तक्षशिला आदि के जैन स्तूपों से पुरातत्त्ववेत्ताओं की अनभिज्ञता के कारण उन्हें बौद्ध स्तूप मानकर जैन इतिहास के साथ खिलवाड़ किया गया है। हुएन सांग आदि चीनी बौद्ध यात्रियों ने या तो अज्ञानता वश या दृष्टिराग से जहाँ भी कोई स्तूप देखा उसे जैन स्तूप होते हुए भी, निरीक्षण किए बिना क्षट से अशोक स्तूप लिख दिया गया।

सम्राट सम्प्रति ने तक्षशिला में अपने पिता कुणाल के लिए एक जैन मन्दिर का निर्माण भी कराया था जो आज कुणाल स्तूप के नाम से प्रसिद्ध है। इसी पर से तक्षशिला का नाम कुणालदेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। कुणाल तक्षशिला में निवास करता था, इसलिए उसकी धर्मोपासना के लिए सम्राट सम्प्रति ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। कुणाल के स्थान पर पुराणों में "सुयश" नाम मिलता है। बौद्धों के दिव्यावदान, जैनों के परिशिष्ट-पर्व, विचार श्रेणी तथा तीर्थकल्प से इन तथ्यों की पुष्टि होती है। वायुपुराण तथा मत्स्य-पुराण से भी इन बातों की पुष्टि होती है।[77]

इतिहासज्ञों का मत है कि सम्राट सम्प्रति का राज्य भारत, योन, कम्बोज, गांधार, अफगानिस्तान, वाह्लीक, तुर्कीस्तान, ईरान, लंका, बलख, बुखारा, काशगर, ईराक, नेपाल, तिब्बत, भूटान, अरब, अफ्रीका, ग्रीस, एथेन्स, साइरीन, कोरीथ, बेबीलियन, ग्रीस की सरहद तथा एशिया माइनर तक था। अपने राज्य के सब देशों में उसने अपने समय में अनेक जैन मन्दिर बनवाये थे। तीर्थकल्प में भी लिखा है कि परमार्हत सम्प्रति ने अनार्य देशों में जैन विहार (जैन मन्दिर), दानशालायें, बावड़ियां आदि लाखों की संख्या में बनवाये थे[78]। कई विद्वानों का मत है कि मौर्य सम्राट सम्प्रति की रोकथाम के लिए ही चीन की विश्व प्रसिद्ध दीवार (विश्व की आश्चर्य) बनाई गई थी जो आज भी विद्यमान है।

गांधार से लेकर सिन्धु सौवीर तक तथा कुरुक्षेत्र तक सारे पंजाब जनपद में अति प्राचीन काल से जैन धर्म का व्यापक प्रसार चला आ रहा था। सम्राट सम्प्रति के समय में आर्य सुहस्ति, उनके शिष्य आर्य सुस्थित, तथा लाखों की संख्या में जैन साधु-साध्वियां और श्रावक-श्राविकायें पंजाब (पाकिस्तान) के जनपद में सर्वत्र मंगल-विहार और विचरण करते थे।

वस्तुतः सम्राट संम्प्रति ने विशाल सेना सुसज्जित करके एक-एक

करके सौराष्ट्र, आन्ध्र, द्रमिल (तमिल) पलिदस; अनूप, महिष्मंडल आदि देशों पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् गौड़, विदेह, बंग, कामरूप, प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, काशी, कोशल, कोसांबी, अंग, चेदि, पुलीन्द्र, अटवी आदि देशों पर विजय प्राप्त की। तदुपरान्त सम्प्रति ने उत्तर में हस्तिनापुर, मत्स्य, सूरसेन (शूरसेन), कुरु, पांचाल, मद्र, ब्रह्मवर्त, कश्मीर, तिब्बत, खोतान, नेपाल-भूटान आदि देशों पर विजय पताका फहराई। तदनन्तर, सम्राट सम्प्रति ने उत्तर पश्चिम में बाल्हीक, योन, कंबोज, गांधार पठाण (अफगानिस्तान), शक-फारस, अरबस्तान, एशियाई तुर्किस्तान, सीरिया, ग्रीस, उत्तर एवं पूर्व अफ्रीका-इजिप्ट, एबीसीनियां आदि पर आक्रमण करके ताशकन्द, समरकन्द, सिन्धु-सौवीर पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् सम्प्रति ने उत्कल-कलिंग, चौल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी आदि देशों को फतह किया। प्रत्येक दिशा में विजयोपरान्त उसने पाटलीपुत्र में आकर अपने को पुनः सुसज्ज किया और आगे विजयार्थ पुनः प्रयाण किया।

उसकी सेना में पचास हजार हाथी-दल, नौ लाख रथ-दल, एक करोड अश्वारोही तथा सात करोड पैदल सैनिक थे। इससे पूर्व भी शान्तिकाल में, मेगस्थनीज के प्रवास के समय भी उसकी सुविशाल सैन्य शक्ति थी। उसकी सेना में चार लाख नौकादल भी थे।

प्रियदर्शी सम्राट सम्प्रति मौर्य पर जैन आचार्य महागिरि (282 ईसा पूर्व) का वरद हस्त रहा तथा सम्प्रति ने जीवन भर जैन साधुओं की अर्चना की एवं देवमूर्तियों (जैन मूर्तियों) की स्थापना कराई। उसने विश्वव्यापी जैन धर्माभियानों का आयोजन किया एव उनमें अपूर्व सफलता प्राप्त की। उसके विभिन्न शिलालेखों से उसकी धर्म विजयों पर पूरा प्रकाश पडता है।

सम्राट सम्प्रति विश्व विजय करना चाहता है तथा चीन पर भी आक्रमण कर सकता है, इस आशंका से चीन के शहंशाह शी ह्वांग ने सम्राट सम्प्रति के आक्रमणों से अपने बचाव के लिए उपयुक्त भव्य दीवाल बनवाई थी जो आज भी विद्यमान है और विश्व के महाआश्चर्यों में गिनी जाती है।

मगध, अवंती, गांधार, सौराष्ट्र, कश्मीर, नेपाल, कोसांबी, तिब्बत, सुवर्णगिरी, तोसली आदि में सम्प्रति ने राजवंशी सूबाओं की स्थापना की। उसकी पुत्री चारुमती का देवपाल के साथ नेपाल में विवाह हुआ था।

सम्प्रति ने कश्मीर में श्रीनगर बसाया और वहां 500 चैत्यों, स्तूपों, स्मारकों आदि का निर्माण कराया।

सम्प्रति ने सुवर्णभूमि, चीन, हिन्दचीन, कम्बोडिया, हिमवन्त, वनबास, अपरान्तक, यूनान आदि तथा मेसीडोनियां, सीरिन, एपीरस, लंका आदि देशों में धर्म विजय प्राप्त की और सर्वत्र जैन श्रमणों के लिए विहार बनवाये। विदेशें के साथ सम्प्रति के अच्छे राजनयिक सम्बन्ध थे। सीरिया, ग्रीस, मेसीडोनिया आदि के साथ उसके मित्रता के सम्बन्ध थे।[79\89]

प्रागैतिहासिक काल में भरतवर्ष का क्षेत्रफल अविभक्त हिन्दुस्तान से लगभग दुगुना था। पृथक-पृथक् राज्यों के होने पर भी क्षेत्रीय अखण्डता अबाधित थी। इतिहास काल में भारत की पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर सीमाओं के पार श्रमण सभ्यता, संस्कृति और सत्ता के प्रचुर साक्ष्य मिलते हैं। सम्राट सम्प्रति ने विजयार्ध (वैताढ्य) पर्वत तक त्रिखण्ड-भरतवर्ष को जिनायतनों से मंडित कर दिया जैसा कि आचार्य हेमचन्द्र ने अपने परिशिष्ट-पर्व में लिखा है:

"आवैताढ्यं प्रतापाद्यं स चकाराकिकारथीः।
त्रिखण्डं भरतक्षेत्रं जिनायतनमण्डितम्।।
— हेमचन्द्राचार्य कृत परिशिष्ट पर्व-11/65

मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के दीक्षा गुरु श्रुतकेवली भद्रबाहु ने अपने शिष्य चन्द्रगुप्त और विशाल जैन साधु संघ के साथ 298 ईसा पूर्व में सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासन-काल में दक्षिण भारत की यात्रा की थी जिससे जैन धर्म की भी व्यापक प्रभावना हुई थी।[31]

सम्राट सम्प्रति ने विदेशों में सर्वत्र जैन संस्कृति का सन्देश पहुंचाया। अफगानिस्तान से संलग्न अरब क्षेत्र को जैन आगमों में पारस्य के नाम से अभिहित किया गया है। सम्राट सम्प्रति ने जैन श्रमणों के विहार की व्यवस्था अरब व ईरान में भी की थी। वहां उसने अहिंसा धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार किया तथा ईरान और अरब निवासियों ने बड़ी संख्या में जैन धर्म स्वीकार किया था। बाद में अरब पर ईरान के आक्रमण करने पर जैन धर्म में दीक्षित लोग दक्षिण भारत में चले आये और इनकी संज्ञा "सोलक

अरबी जैन" हुई। जैन संस्कृति ने इस प्रकार ईरान (पारस्य) की संस्कृति पर भी व्यापक प्रभाव डाला। जब अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने की खबर ईरान में फैली तो उनके पावन दर्शन के लिए हजारों ईरानी भारत आये थे। उनमें मगध सम्राट बिम्बसार के पुत्र राजकुमार अभय के मित्र ईरान के राजकुमार आर्दराक भी थे। वे भी भगवान महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर जैन मुनि हो गये थे और ईरान में जैन धर्म व संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार करते रहे।

कालान्तर में सम्राट अशोक और सम्राट सम्प्रति ने अपने धर्म रज्जुकों, भिक्षुओं और मुनियों को धर्म प्रचारार्थ ईरान भेजा। अरब और ईरान में और भी जैन सन्त प्रचारार्थ जाते रहे। इतिहाकार जी.एफ. मूर के अनुसार, "हजरत ईसा के जन्म की शताब्दी के पूर्व ईराक, श्याम और फिलिस्तीन में जैन श्रमण और बौद्ध भिक्षु सैकड़ों की सख्या में फैले हुए थे।"

सन् 80 ई. में सोपारक से एक भारतीय राजदूत यूनान गए थे; उनके साथ जैनाचार्य भी गए थे और उन्होंने यूनान में जैन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण प्रचार किया और अन्त में एथेन्स नगर में समाधिमरण प्राप्त किया।

अति प्राचीन काल में बेलीलोन, केपाडोसिया, ईराक और तुर्किस्तान आदि देशों का भारत से घनिष्ठ सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध था। इन सभी स्थलों पर जैन साधु और श्रावक लाखों की संख्या में निवास करते थे तथा वहां सर्वत्र हजारां जैन मन्दिर विद्यमान थे।

अध्याय 21

कलिंगाधिपति चक्रवर्ती सम्राट् महामेघवाहन खारवेल और जैन धर्म का देश-विदेशों में व्यापक प्रचार

खण्डगिरि (उड़ीसा) में एक प्राचीन शिलालेख है जिसमें तीर्थंकर ऋषभदेव की एक मूर्ति का उल्लेख है। आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व उस मूर्ति

को मगध के नंदवंशी सम्राट नंदवर्धन कलिंग से पटना ले गए और ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में कलिंग सम्राट खाखेल उस मूर्ति को पटना से वापिस कलिंग ले आये। यह मूर्ति संभवतः भगवान महावीर, बल्कि भगवान पार्श्वनाथ से भी पहले बनी होनी चाहिए। यह तीर्थंकर ऋषभ के अस्तित्व का स्पष्ट प्रमाण है जो कि आर्यों के वेदों, शास्त्रों और अन्य प्रलेखों से भी प्रमाणित है। मोहन जोदड़ो आदि सिन्धुघाटी सभ्यता केन्द्रों से जो पुरातत्त्व उपलब्ध हुआ है वह तो वेदों से भी प्राचीन है। उसमें ऐसी योगियों की मूर्तियां मिली हैं जिनके नेत्र अर्धोन्मीलित हैं और दृष्टि नासाग्र पर स्थिर दृष्टिगोचर होती है। इससे स्पष्ट है कि तब योग का प्रचार था और लोग योगियों की मूर्तियां बनाकर पूजते थे। ये मूर्तियां हमें प्रथम तीर्थंकर की इस मूर्ति से हजारों वर्ष पहले ले जाती है जिसे पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व में नन्दवर्धन कलिंग ले गया था। ये मूर्तियां जैन ही हो सकती हैं क्योंकि वे वैदिक मान्यता से बाहर पडती हैं।

इस सब साक्ष्य से मेजर जनरल जे.जी.आर. फरलॉग के निम्नलिखित मत की पुष्टि होती है जिसे उन्होने वर्षों पहले व्यक्त किया था। उन्होंने लिखा था कि ईसा पूर्व 1500 से 800 वर्षों तक अथवा अज्ञात काल से समग्र पश्चिमी और उत्तर भारत पर तातारी द्रविड लोगों का शासनाधिकार था। वे लोग, वृक्ष, सर्प और लिंग की पूजा करते थे। किन्तु उसी प्राचीनकाल में समग्र उत्तरी भारत में एक अति प्राचीन और सुसंगठित धर्म, तत्वज्ञान, चारित्र और सन्यास प्रधान मत अर्थात् जैन धर्म प्रचलित था। उसमें से ही तदुपरान्त ब्राह्मण और बौद्ध लोगों ने सन्यास की बातें ग्रहण कीं।

आर्य लोग गंगा अथवा सरस्वती तक पहुंचे भी न थे कि उसके बहुत पहले ही जैनों को 22 तीर्थंकरों ने शिक्षित और दीक्षित किया था जो कि ईसा पूर्व 9वीं-8वीं शताब्दी के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ से बहुत पहले हो चुके थे। पार्श्वनाथ अपने इन पूर्वजों को जानते थे और उनके ग्रन्थ भी अर्थात् "पूर्व" तब से शिष्य परम्परा से बराबर चले आ रहे थे। वानप्रस्थ मुख्यतः जैन संस्था ही थी जिसका जोरदार प्रचार सभी तीर्थंकरों, खास तौर से महावीर ने किया था।[56]

खारवेल का पिता बुद्धिरण तथा पितामह क्षेत्रराज उड़ीसा के चेदिवंश

के थे और सब जैन धर्म के अनुयायी थे। खारवेल का जन्म 197 ईसा पूर्व में हुआ था। खारवेल सन् 173 ईसा पूर्व में 24 वर्ष की आयु में राज्यगद्दी पर बैठा। चेदि वंश का उल्लेख वेदों में भी आता है।

मगध देश के राजा नन्दवर्धन (प्रथम) ने 457 ईसा पूर्व में उड़ीसा पर आक्रमण करके वहां से अन्य धन-धान्य के साथ आदिजिन (ऋषभदेव) की प्रतिमा को भी उठाकर ले गया, जिसे नन्दवर्धन ने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) में जैन मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें स्थापित किया। वह मूर्ति कलिंगजिन के नाम से प्रसिद्ध हुई। मगध का सम्पूर्ण नन्दवंश जैन धर्म का अनुयायी था तथा समस्त उत्तर भारत और पूर्व भारत में जैन संस्कृति व्याप्त थी। यह घटना महावीर के निर्वाण के 70 वर्ष बाद की है।

शदाब्दियों बाद खारवेल ने अपने पूर्वजों की पराजय का बदला लेने के लिए अपने पूर्वजों के इष्टदेव आदिजिन की वह मूर्ति वापिस लाकर पुनः अपने यहां स्थापित करने के लिए ईसा पूर्व 165 में मगध पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की और बहुत धन-माल के साथ कलिंगजिन की प्रतिमा को वहां से लाकर एक विशाल मन्दिर में विराजमान किया। खारवेल स्वयं ऋषभदेव की इस प्रतिमा का पूजन करके आत्म-कल्याण की साधना करता था। यह मन्दिर राजमन्दिर के नाम से प्रसिद्ध था। अपने राज्य के तेरहवें वर्ष में खारवेल ने कुमारी पर्वत पर जैन धर्म का विजयचक्र प्रवृत्त किया और वहां जैन गुफा का निर्माण कराया।

खारवेल ने चारों दिशाओं में दूर-दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया। अपने राज्य के बारहवें वर्ष में उसने उत्तरापथ-उत्तरदिशा मे स्थित कश्मीर, तक्षशिला, गाधार आदि जनपदों पर आक्रमण करके उन पर विजय पाई।[119] महामेघवाहन ने कश्मीर, तक्षाशिला तथा गांधार पर भी शासन किया। उसने सारे भारत में तथा समुद्रपार के द्वीपों और देशों में भी अपना राज्य स्थापित कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था और सर्वत्र जैन धर्म की प्रभावना की थी। उसने कश्मीर और गांधार में भी अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। उसकी मृत्यु ईसा पूर्व 148 में हुई। उसके बाद उसके पुत्र श्रेष्ठसेन ने सन् 61 ईसा पूर्व तक तीस वर्ष राज्य किया। खारवेल मेघवाहन से लेकर उसके प्रपोत्र प्रवरसेन तक चेदिवंश ने चार

पीढ़ियों तक लगातार कश्मीर, तक्षशिला और गांधार पर राज्य किया।

प्राग्वैदिक काल में पांचवें तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ से भी पहले कश्मीर में जैन धर्म विद्यमान था[120]। इसी काल में सेठ भावड़ नामक जैन श्रावक ने 19 लाख स्वर्ण मुद्रायें खर्च करके कश्मीरक देश में श्री ऋषभदेव, श्री पुण्डरीक गणधर और चक्रेश्वरी देवी की तीन प्रतिमायें जैन मन्दिर का निर्माण कराकर प्रतिष्ठित कराई। वहा से उसने शत्रुंजय तीर्थ पर जाकर वहां लेप्यमय प्रतिमाओं को बदलकर मम्माणी (रत्न विशेष) की जिन प्रतिमायें स्थापित कीं।

अध्याय 22

महाराजा कुमारपाल सोलंकी और जैन धर्म

विक्रम की बारहवीं-तेहरवी शताब्दी में हुआ कुमारपाल सोलंकी जैनधर्मी नरेश था, जो जैन कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि का शिष्य था। इसकी राजधानी गुजरात में पाटण थी। इसका राज्य-विस्तार 18 देशों और विदेशों में था – गुर्जर, लाट, सौराष्ट्र, सिन्धु-सौवीर, मरुधर, मालवा, मेदपाट, सपादतक्ष, जम्मेरी, तक्षशिला, गांधार, पुण्ड्र आदि देश (उच्चनगर), कश्मीर, त्रिगर्त प्रदेश (कागडा-जालधर आदि), काशी, आभीर, महाराष्ट्र, कोकण, करणाट देश। उसका राज्य पजाब के बाहर तुर्किस्तान तक भी विस्तृत था। उसकी राज्य सीमा तुर्किस्तान, कुरु, लंका और मगध तक थी।[122]

उसके राज्य में जैन धर्म की महती प्रभावना थी। सारे राज्य में अहिंसा का साम्राज्य था तथा उसने पशुबलि, यज्ञ तथा नरबलि आदि बन्द करा दिए थे। उसने राज्याज्ञा निकलवाई थी कि जो परस्त्री-लम्पट होगा और जीव हिंसा करेगा, उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा।

कुमारपाल सोलंकी ने संघपति बनकर चतुर्विध संघ के साथ गिरनार आदि अनेक तीर्थों की यात्रायें कीं। उसने सारे राज्य में 1440 नए जैन मन्दिरों का निर्माण कराया और उन पर स्वर्ण कलश चढ़वाये। उसने 1600 पुराने जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। उसने अपनी राजधानी

पाटणा में अनेक जैन मन्दिर बनवाये जिनमें सर्वोपरि त्रिभुवनपाल बिहार था। आचार्य हेमचन्द्र और उनके शिष्य-मंडल ने कुमारपाल के सहयोग से प्रभूत साहित्य की रचना की। उसने 21 जैन शास्त्र-भंडारों की स्थापना की। उसके ब्राह्मण विद्वानों और कवियशों ने कुमारपाल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। किसी ने सम्राट अशोक मौर्य से उसकी तुलना की तो किसी ने उसे श्रेणिक बिम्बसार, सम्राट सम्प्रति मौर्य, महामेघवाहन खारवेल, कश्मीर-सम्राट् सत्य प्रतिज्ञ अशोक महान जैसे महान जैसे सम्राटों के समकक्ष स्थान दिया है।

जैन धर्म की महिमा के प्रसार के लिए उसने कुमार विहार मन्दिर आदि मे अष्टाह्निका महोत्सव आदि बडे उत्साह से मनाये। कुमारपाल की आज्ञा से उसके अधीनस्थ 18 देश-विदेशों के माण्डलिक राजाओं ने और सामन्त राजाओं ने अपने-अपने राज्यों में कुमार विहार नामके जैन मन्दिरों का निर्माण कराया।

अपने अधीनस्थ राज्यों में उसने जीवहिसा बन्द कराई। उत्तर में कश्मीरक प्रदेश जनपद से उसे भेंट आती थी तथा मगध, सौराष्ट्र, सिन्धु, पंजाब आदि उसके अधीन थे। आचार्य हेमचन्द्र ने महावीर चरित्र में लिखा है कि राजा कुमारपाल की आशा का पालन उत्तर में तुर्किस्तान और पश्चिम में समुद्र-पर्यन्त देशो तक होता है। उसने अपने राज्य के सभी जनपदों में जैन धर्म का व्यापक प्रचार और प्रसार कराया।[123]

अध्याय 23

मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़शाह (सुकृत काली 1318-1338 विक्रम) और जैन धर्म

इसने भारत और विदेशों के 94 नगरों में जैन मन्दिरों का निर्माण कराया; भारत और विदेशों के विभिन्न जनपदों में उसने जैन तीर्थ यात्रा के संघ निकाले। इतिहासकार लिखते हैं कि पेथड़शाह जहां-जहां यात्रा करने गया, वहां-वहां वह जैन मन्दिरों का निर्माण कराता गया। उन मन्दिरों में से पाकिस्तान के पारकर (सिन्धु जनपद), देपालपुर (सिन्ध), त्रिगर्त,

वीरपुर (सिन्ध), उच्चनगर, पाशुनगर (पेशावर), जोगिनीपुर (दिल्ली) आदि है। उसने पंजाब में अनेक नगरों में भी जैन मन्दिरों का निर्माण कराया और वहां सर्वत्र जैन धर्म का प्रचार किया।[124] कवि कल्हण ने अपनी राज तरंगिणी में इसका विस्तार से उल्लेख किया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी कश्मीर और उसके परिवर्ती क्षेत्रों की जैन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला है और लिखा है कि लोग अपने-अपने इष्टदेवों के मन्दिरों और स्मारकों में उपासना करते थे।

अध्याय 24

एबीसीनिया और इथोपिया में जैन धर्म

ग्रीक इतिहासकार हेरोडटस ने एबीसीनिया और इथोपिया मे जैन धर्मानुयायी जिम्नोसेफिस्टों के अस्तित्व का उल्लेख किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार पं. सुन्दरलाल ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "ईसा और ईसाई धर्म" में लिखा है कि उस जमाने के इतिहास से पता चलता है कि पश्चिमी एशिया, यूनान, मिश्र और इथोपिया के पहाड़ों और जंगलो में उन दिनों हजारो जैन सन्त-महात्मा जगह-जगह बसे हुए थे।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् वान क्रेमर के अनुसार, मध्य पूर्व एशिया में प्रचलित "समानिया" सम्प्रदाय श्रमण जैन सम्प्रदाय था। प्रसिद्ध विद्वान जी.एफ. मूर ने लिखा है कि ईसा की जन्मशती के पूर्व मध्य एशिया, ईराक, श्याम और फिलिस्तीन, तुर्किस्तान आदि में जैन मुनि हजारों कि संख्या में फैलकर अहिंसा-धर्म का प्रचार करते रहे। पश्चिमी एशिया, मिश्र यूनान और इथोपिया के जंगलों में और पहाड़ों पर उन दिनों अगणित जैन साधु रहते थे जो अपने त्याग और अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। मेजर जनरल जे.जी.आर. फरलॉग ने अपनी खोज से सिद्ध किया है कि आक्सियाना, समरकन्द, कैस्पिया और बल्ख नगरों में जैन धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार था। यहूदी लोग भी जैन सस्कृति से अत्यन्त प्रभावित थे तथा उनमें ऐसे लोगों का एक व्यापक एस्सिनी सम्प्रदाय बन गया था।

अध्याय 25

राक्षस्तान में जैन धर्म

मिश्र के दक्षिण के भूभाग को प्राचीन यूनानी लोग राक्षस्तान कहते थे। इन राक्षसों को जैन पुराणों में विधाधर अर्थात् वैज्ञानिक कहा गया है। वे श्रमण (जैन) धर्म के अनुयायी थे। इस समय यह भूगाग सूडान, एबीसिनिया और इथोपिया कहलाता है। यह सारा क्षेत्र श्रमण सस्कृति का क्षेत्र था।

मूडबिद्री आदि दक्षिणभारत के जैन तीर्थों के जैन व्यापारी एशिया और अफ्रीका के विभिन्न देशों से व्यापार करते थे तथा वहा से आभूषण, मोती आदि मंगवाते थे। अफ्रीका में स्थान-स्थान पर उनकी व्यापारिक कोठिया और जैन मन्दिर विद्यमान थे।

ये लोग वहा बिल्कुल साधुओ की तरह रहते थे और वहां अपने त्याग और तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे।

अध्याय 26

मिश्र (इजिप्ट) और जैन धर्म

ब्रिटिश स्कूल ऑफ इजिप्शियन आर्कियोलॉजी के सर फिलंडर्स पैट्री ने मिश्र की प्राचीन राजधानी मैक्फिस मे कुछ भारतीय शैली की मूर्तियों की खोज से यह सिद्ध किया कि प्राचीन मिश्र में लगभग 590 ईसा पूर्व में एक भारतीय बस्ती विद्यमान थी। इनमें से एक मूर्ति तो स्पष्टया जैन आसन में गम्भीर ध्यान-मुद्रा मे पद्मासन मे बैठे एक भारतीय योगी की है। आर्य मुसाफिर लेखराम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "कुलयाते आर्य मुसाफिर" मे इस बात की पुष्टि की है कि उन्होंने मिश्र की विशिष्ट पहाडी पर ऐसी मूर्तियां देखी हैं जो जैन तीर्थ गिरनार की मूर्तियों से मिलती-जुलती है।

मिश्रियों के धार्मिक आग्रह और सिद्धांत जैनों से मिलते-जुलते थे। वे विशुद्ध शाकाहारी और अहिंसावादी थे। वे अपने देवता होरस की दिगम्बर

मूर्तियां बनाते थे। उत्तरी अफ्रीका में और भूमध्य सागर के साथ-साथ लाखों श्रमण निवास करते थे। आज भी अफ्रीका के विभिन्न देशों में हजारो जैन निवास करते हैं।

प्राचीन सभ्यताओ मे मिश्र की सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है जिसकी परम्परा भारत की ही भांति सात हजार वर्षों से भी अधिक समय से अक्षुण्ण चली आ रही है। बेबीलोनिया में जैन धर्म का प्रचार बौद्ध धर्म का प्रचार होने से पूर्व ही हो चुका था। इसकी सूचना बौद्ध ग्रन्थ बाबेरू जातक से मिलती है। इसी की समकालीन सभ्यताएं सुमेर, असुर और बाबुल की है तो भारत से गए जैन पणि व्यापारियों की समृद्धि के साथ-साथ पनपी और विकसित हुई। मध्य एशिया की सस्कृतियों में सबसे प्राचीन समझी जाने वाली सुमेर और बाबुल की सस्कृति के जनक तीर्थंकर ऋषभदेव के वंशज और अनुयायी रहे हैं। सुमेरी सस्कृति के अनेक चिह्न जैन संस्कृति से मिलते-जुलते हैं। बेबीलोनिया का सम्राट नेबुचदनेजर जैन संस्कृति से आकृष्ट होकर जैन तीर्थ यात्रा के लिए भारत आया था और उसने जैन तीर्थ रैवत गिरनार की यात्रा करके वहां तीर्थंकर नेमिनाथ का एक मन्दिर बनवाया था। सौराष्ट्र मे इसी सम्राट नेबुचदनेजर का एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। इन सभी सभ्यताओ मे पुरोहित परम्परा का पूर्ण विकास हुआ है। ये श्रमण पुरोहित प्राय: पूरे समाज के ही सचालक बन गए थे और उन्होंने भारत की जैन पणि जाति के विश्वव्यापी व्यापार-साम्राज्य के अन्तर्गत, साम्राज्यों के निर्माण-विनाश तक की सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी। ये अधिकाश श्रमण पुरोहित लोक हितैषी एव त्यागी प्रवृत्ति के थे। निस्सन्देह तुर्की से अफगानिस्तान तक की मरुभूमि और निर्जन स्थलियों में उस समय भी स्थान-स्थान पर गृहत्यागी श्रमण विहार करते थे। ये श्रमण संस्कृति से प्रभावित एव उसके अगभूत यहूदी समाज की भांति समाज के कल्याण के लिए सर्वस्व त्याग कर निस्पृह विचरण करते थे। मूसा से ईसा तक यही परम्परा चली। ये यहूदी और श्रमण निर्जनवास करते, अत्यन्त अल्प और मोटे वस्त्र पहनते और परिव्राजक होकर कठोर तप करते थे। स्वयं मूसा ने चालीस दिन तक सिनाई पर्वत पर भूखे-प्यासे रहकर घोर तप किया था। ईसा के जन्म से चार सौ वर्ष से भी अधिक पूर्व ऐसे श्रमण सन्यासियो के आश्रम और संघ उत्तरी अफ्रीका के भूमध्य सागर तट पर,

लेबनान, सीरिया, इथोपिया आदि में विधिवत् विद्यमान थे तथा वहां सर्वत्र दिगम्बर श्रमण साधु विहार करते थे। इतिहास से पता चलता है कि 998 ईसवीं के लगभग भारत से बीस जैन साधु पश्चिम एशिया के देशों में ससंघ धर्म प्रचारार्थ गए और उन्होंने वहा जैन सस्कृति का अच्छा प्रचार किया। जैन श्रमण संघ 1024 ई. में पुनः शान्ति, अहिंसा और समतावाद का अमर संदेश लेकर विदेश गया और लौटते हुए अरब के तत्वज्ञानी कवि यबुल अला अल्मआरी से उसकी भेट हुई। कवि ने बाद में बगदाद स्थित जैन दार्शनिकों से जैन शिक्षा ग्रहण की। मध्यकाल में भी जैन दार्शनिकों के अनेक संघ बगदाद और मध्य एशिया गए थे और वहा अहिंसा धर्म का प्रचार किया था जिसका प्रभाव इस्लाम धर्म के "कलन्दर तबके" पर विशेष रूप से दीर्घकाल तक बना रहा था। नवीं-दसवीं शती में अब्बासी खलीफाओं के दरबार मे भारतीय पण्डितो के साथ-साथ जैन साधुओं को सादर निमन्त्रण दिया जाता था और ज्ञान चर्चा की जाती थी।

अध्याय 27

सुमेरिया, असीरिया, बेबीलोनिया आदि देश और जैन धर्म

तेरहवें तीर्थंकर विमल नाथ अथवा विमल वाहन को वैदिक हिन्दू परम्परानुसार वराहावतार घोषित किया गया था, क्योंकि उन्होने लुप्तप्राय धर्म तीर्थ की पुनः स्थापना करके पृथ्वी का उद्धार किया था। इसी कारण उनकी प्रख्याति भारत के बाहर उन देशों में भी हुई, जहां भारतीय मूल के प्रवासी बसे हुए थे। प्राचीन काल से ही भारतीय मिश्र, मध्य एशिया, यूनान आदि देशों से व्यापार करते थे तथा अपने व्यापार के प्रसग में वे उन देशों मे जाकर बस गये थे। सु-राष्ट्र अथवा सौराष्ट्र के "सु"-जातीय लोगों के विषय में जर्मन विद्वान जे.एफ. हैवीन्ट ने यह प्रमाणित किया है कि वे लोग सौराष्ट्र से जाकर तिगरिस और यूफ्रेट्स नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश में जाकर बसे थे। उनके 'सु'-नाम के कारण ही उस प्रदेश का नाम सुमेरिया **(Summeria)** पड़ा था। वे सभी जैन धर्म के अनुयायी थे तथा मेरु के

अकृत्रिम जिनालयों के अनन्य भक्त थे।[54] प्रो. हेवीन्ट ने उन लोगों को भारत से आया हुआ बताया है। उनके बीस हजार वर्ष पुराने नगरादि अवशेषों के नाम प्राकृत भाषा के अनुरूप हैं, जैसे "उर" "पुर" का द्योतक है "एरोदु" "ऐरद्रह" का अपभ्रंश है। उनके अनुसार जन्म मरण के चक्र से मुक्त हुआ प्राणी महान् बन कर परमात्मा बन सकता है। जैन धर्म की भी यही शिक्षा है।

सुमेरु-अक्कड़ आदि के मेल-मिलाप से बने राज्य बाबुल ;ठंइलसवदपंद्ध के सम्राट् नेबुचडनेज़र (जो संभवतः "नमथन्द्रेश्वर" का अपभ्रंश रूप है) का एक ताम्रपट लेख काठियावाड से मिला है, जिसे प्रो प्राणनाथ ने पढ़ा हे। अत. निस्सन्देह रूप से स्पष्ट है कि सुमेर लोग मूलतः भारत के निवासी थे और जिनेन्द्र के भक्त थे। उस लेख में उनको रेवा नगर के राज्य का स्वामी लिखा है तथा गिरनार के जिनेन्द्र नेमिनाथ की वदना करने के लिए आया लिखा है। "जैन" (गुजराती साप्ताहिक, भावनगर) – 2 जनवरी, 1937 (462)[55] नेबुचडनेजर के पूर्वज रेवानगर के ही निवासी थे। सुमेरुवंश के राजाओं का आदर्श भारतीय राजाओं की भांति अहिंसा परक था। उनके एक बड़े राजा हम्मुरावी ने इसी आशय का एक शिलालेख खुदवाया था जिसमें ऋषभदेव को सूर्य के रूप में स्मरण किया गया है।

सुमेरु के लोगों का मुख्य देवता "सिन" (चन्द्रदेव) मूल में "जूइन कहलाता था जिसका सुमेरी भाषा में अर्थ "सर्वज्ञ ईश" था। उसे "नन्नर" (प्रकाश) भी कहते थे। सुमेर और सिंधु उपत्यका की मुद्राओं पर प्रोफेसर प्राणनाथ ने सिन, नन्नर, श्रीं, ह्रीं आदि देवताओं के नाम भी पढे हैं और उन्हें जैनादि मतों के देवताओं के अनुरूप बताया है। तम्मुज और इश्तर के प्राचीन सुमेरीय कथानक के प्रतीकों में पूरा जैन सिद्धान्त भरा हुआ है। उसकें सूकर के रूप में तीर्थंकर विमलनाथ का उल्लेख होना संभव है।

ग्रीस, मिश्र और ईरान के प्राचीन लेखकों की कृतियों में पाये जाने वाले उल्लेखों, बेबीलोन, चम्पा (इण्डोचाइना), कम्बोज (कम्बोडिया) के भूखनन तथा मध्य अफ्रीका, मध्य अमेरिका के अवशेषों में बिखरी पड़ी जैन-सस्कृति पर प्रकाश डालने अथवा शोध-खोज करने की तरफ न तो प्रचार और न हमारे जैन चक्रवर्तियों के विजय मार्गों आदि को ऐतिहासिक

रूप देने में ही जैन लोगों ने विशेष प्रयास किया।

पश्चिम एशिया में मैसोपोटामिया देश अति प्राचीन काल से उत्तर, मध्य और दक्षिण ऐसे तीन विभागों मे विभक्त था। उत्तर विभाग अपनी राजधानी असुरनाम के कारण एसीरिया के नाम से पहचाना जाता था। मध्य विभाग की प्राचीन राजधानी कीश थी किन्तु हम्मुराबी के समय में ईसा पूर्व 2123 से 2081 में बेबीलोन के विशेष विकास पर आ जाने के कारण मध्य भाग की राजधानी बेबीलोन बनी और समय बीतने पर मध्य विभाग बेबीलोन के नाम से प्रसिद्धि पा गया। समुद्र तटवर्ती दक्षिण भाग की प्राचीन राजधानी ऐर्द्य (म्तपकमन) बन्दरगाह थी। कुछ समय बाद बेबीलोन के शक्तिशाली राजाओ ने इन तीनो भागों पर अपना अधिकार जमा लिया और तीनों संयुक्त प्रदेशो की राजधानी बेबीलोन को बनाया।

जैन साहित्य में वर्णित आर्द्रनगर ही ऐर्द्य नगर होने के प्रमाण मिलते हैं।

ईसा पूर्व 604 मे बेबीलाने की गद्दी पर जगत्प्रसिद्ध सम्राट नेबुचेदनेजर (द्वितीय) बैठा। 605 ईसा पूर्व में उसने असीरिया को हराकर सारे प्रदेश को बेबीलन में मिला लिया। बाद मे वह दिग्विजय के लिए निकला तथा उसने एशिया और अफ्रीका का विशाल भाग जीत लिया। टायर के बलबे को भी इसने सख्ती से कुचल डाला और इस प्रकार पश्चिमी एशिया का यशस्वी सम्राट् बन गया।

बेबीलान में उसने अनेक जैन मन्दिरो का निर्माण कराया। उसने नगर की रक्षा के लिए नगर को चारों ओर से घेरती हुई भव्य ऊंची दीवाल का निर्माण कराया था। प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार हेरोडेटस के कथनानुसार, इसका घेराव 56 मील का था तथा यह दीवाल इस नगर की चारों तरफ से लोहे की ढाल के समान रक्षण करती थी। उसने बेबीलन में भव्य स्वर्गीय महलों का निर्माण कराया था जो हैगिंग गार्डन्स कहलाते हैं और विश्व के आश्चर्यों में से है। ईसा पूर्व 326 मे भारत से लौटते हुए यूनानी सम्राट् सिकन्दर महान् इसी महल पर अत्यन्त मुग्ध होकर इसी में ठहरा था तथा इसी महल में उसकी हत्या भी हुई थी।

नेबुचन्दनेज़र सारे मैसोपोटामिया का सम्राट था। वह भगवान महावीर और मगधपति श्रेणिक बिम्बसार का समकालीन था। मगधपति श्रेणिक

बिम्बसार ने आर्द्रराज नेबुचंदनेज़र को भेंट भेजी थीं और उसके पुत्र अभय कुमार ने नेबुचंदनजर के राजकुमार आर्द्र कुमार को अपनी तरफ से जिन प्रतिमा की भेंट भेजी, जिसको देखने पर आर्द्र कुमार प्रतिबोध पाकर भारत वर्ष में आया था।

उस समय के विश्व के इतिहास का अवलोकर करने से ज्ञात होता है कि भारत के बाहर बेबीलन साम्राज्य के सिवाय दूसरा एक भी ऐसा अन्य साम्राज्य नहीं था जिसके सम्राट को मगधाधिपति बिम्बसार भेंट भेजता।

उस समय भारत और बेबीलन साम्राज्य के बीच सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्पर्क और वाणिज्यिक आदान प्रदान होता था तथा लाखों भारतीय और प्रमुखतया जैन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी समस्त मध्य एशिया, मैसोपोटामिया, बेबीलन आदि में बसे हुए थे तथा उनके व्यापारिक काफिले (सार्थवाह) नियमित रूप से आते-जाते थे और बेबीलन साम्राज्य के साथ-साथ रोमन साम्राज्य, फिनीशिया, युरोप तथा सम्पूर्ण विश्व से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करते थे जो कि हजारों वर्ष तक निरन्तर चलता रहा।

सम्राट् नेबुचन्द्रनेजर ने गिरिनार पर्वत (गुजरात-भारत) स्थित विश्वविश्रुत नेमीनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था और उसके नियमित निर्वाह के लिए एक विशाल धनराशि वार्षिक रूप से भेंट की थी। बाद में जब उसका पुत्र आर्द्र कुमार भगवान महावीर से जैन दीक्षा लेकर भारत चला आया तो उसकी नियमित साल-सभाल के लिए नेबुचंद्रनेजर ने उसके पीछे पांच सौ सैनिक भेजे। बाद मे संभवत वे सैनिक उसे छोडकर भाग निकले तब नेबुचन्द्रनेजर अपने पुत्र की खोज में स्वय रौराष्ट्र आया तथा उस समय जैन धर्म का प्रभाव पडने से उसने जैन धर्म अपना लिया। बाद में उसने और आर्द्र कुमार ने समस्य मध्य एशिया में जैन धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। सायरस के शिलालेखो से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उसने बेबीलोन मे वंश परम्परागत रूप से चली आती हुई मर्डूक की पूजा और बलिदान की प्रथा बन्द कराई थी। उत्तरावस्था के नेबुचंद्रनेज़र के शिलालेखों से पता चलता है कि उसने प्रजा की सूचनार्थ डिंडोरा पिटवाया था कि मर्डूक की पूजा के समय बलिदान बन्द किया जाता है। जब नेबुचंद्रनेज़र ने ज़ेरोसिलम को लूटा था तब वहां काफी क्षति पहुची थी। आरंभ में इसके बनवाये हुए मर्डूक के भव्य मन्दिर से यह तो निश्चित

है कि पूर्वावस्था मे वह मर्डूक का पुजारी था, परन्तु उत्तरावस्था में पुत्र की दीक्षा के बाद भारत आने पर उसने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और जीवन भर उसने जैन धर्म का प्रचार किया।

उत्तर वय में नेबुचन्द्रनेजर ने बेबीलन में नौ फुट ऊंची तथा नौ फुट चौड़ी एक स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण कराया था और उसी समय उसने अपने बनवाये हुए इस मुख्य पूजन मन्दिर मे एक मूर्ति के समीप सर्प तथा दूसरी के समीप सिंह का बिम्ब बनवाया था तथा उसके द्वारा निर्माण कराये गये इस्टार के दरवाजे का कुछ भाग टूट जाने से, जिसके टुकड़े बर्लिन और कोस्टेंटीनोपुल के म्यूजियमो मे सुरक्षित रखे हुए है, उनका जो भाग अब भी वहां मौजूद है, उस पर वृषभ (बैल), गेडा, सुअर, साप, सिह, बाज इत्यादि खुदे हुए दिखलाई देते हैं[132]। ये सब जैन तीर्थकरों के प्रतीक-चिह्न (लांछन) है। (वृषभ ऋषभदेव का, गेंडा श्रेयांसनाथ का, सुअर विमलनाथ का, बाज अनन्तनाथ का, साप पार्श्वनाथ का और सिह महावीर का प्रतीक (लाछन) है जो जैनो के क्रमश प्रथम, ग्यारहवें, तरहवे, चौदहवें, तेईसवें और चौबीसवे तीर्थकरो के लांछन है।)

बाज मन्दिर की मूर्तिया बेबीलन के पुराणों में अथवा पुरानी बाइबिल में वर्णित देवो मे से किसी से भी कोई मेल नही खाती।[133] (यह बाज मन्दिर जैनो के चौदहवे तीर्थकर अनन्तनाथ का होना चाहिए, क्योंकि बाज अनन्तनाथ का लांछन है।)

वस्तु स्थिति यह थी कि नेबुचद्रनेजर ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया था। Epic of Creation (बेबीलन का महाकाव्य) मे बेबीलन का एक राजकुमार अपने एक मित्र के सहयोग से स्वर्ग में पहुंचने का प्रयास करता है किन्तु अध बीच में ही सरक पडता है ऐसा वर्णन मिलता है। यह रूपक जैन वाङ्मय मे अभय कुमार की प्रेरणा से आर्यावर्त (भारत) में पहुंचकर दीक्षा लेने की आर्द्र कुमार की भावना तथा बाद में दीक्षा-त्याग करने के कथानक से मेल खाता है।

बेबीलोन का भारत के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध तो ईसा पूर्व पच्चीस सौ वर्ष से था, ऐसा इतिहासकार मानते हैं। हम्मुरावी के कानूनी ग्रंथ पर भी भारतीय न्यायप्रथा का सम्पूर्ण प्रभाव है। प्राचीन प्रवासियों के विवरणों से भी ज्ञात होता है कि भडौच और सोपारा के बन्दरगाहों के द्वारा बेबीलान

भारत के साथ खूब व्यापार करता था। बेबीलोन के शिल्प-स्थापत्य पर भी भारतीय शिल्प-स्थापत्य का प्रभाव है। दोनों देशों के लाखों जैन श्रावक, व्यापारी, सार्थवाह आदि निरन्तर गमनागमन करते थे तथा दोनों देशों में बसे हुए थे तथा उनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विश्वभर में फैला हुआ था।

अध्याय 28

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (उच्चनगर) और जैन धर्म

यहां पर भी जैन धर्म का बडा प्रभाव था। यह सिन्धु नदी के तट पर स्थित था। उच्चनगर में चक्रवर्ती सम्राट भरत के द्वारा निर्माण कराया गया युगादिदेव (ऋषभदेव) का महातीर्थ[58] है। यहा के विशाल महाविहार मे आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान है। उच्चनगर का जैनों से अति प्राचीन काल से सम्बन्ध चला आ रहा है तथा तक्षशिला के समान ही यह जैनो का केन्द्रस्थाल रहा है। तक्षशिला, पुण्ड्रवर्धन, उच्चनगर आदि प्राचीन काल में बड़े महत्वपूर्ण नगर रहे है। इन अति प्राचीन नगरों मे ऋषभदेव के काल से ही हजारो की संख्या में जैन परिवार आबाद थे।[109] विविध तीर्थ कल्प (जिनप्रभ सूरि) में इसका उल्लेख हुआ है)।

अध्याय 29

महामात्य वस्तुपाल का जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए योगदान

धोलका के वीर धवल के महामंत्री वस्तुपाल (विक्रमी सं. 1275 से 1303) ने जैन धर्म के व्यापक प्रसार के लिए महान योगदान किया था। इस कार्य में इनके भाई सेनापति तेजपाल ने भी पूरा योगदान किया। इन लोगों ने भारत और बाहर के विभिन्न पर्वत शिखरों पर सुन्दर जैन मन्दिरों का निर्माण कराया और उनका जीर्णोद्धार कराया। शत्रुंजय, गिरनार, आबू,

कांगड़ा, कश्मीरक देश आदि मे उन्होंने भव्य जैन मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराया। इस कार्य के लिए उन्होने अरबो-खरबों रुपये खर्च किए। सिंध (पाकिस्तान) पंजाब, मुल्तान, गांधार, कश्मीर, सिन्धु-सौवीर आदि जनपदों में उन्होंने जैन मन्दिरों, तीर्थों आदि का नव निर्माण कराया। उन्होने देश-विदेशों की तीर्थयात्रा के लिए समय-समय पर 12 तीर्थ यात्रा संघ निकाले, जिनका खर्चा उन्होने स्वयं दिया। इनमें जैनाचार्य, साधु, साध्वियां तथा श्रावक-श्राविकायें हजारों की संख्या मे सम्मिलित होते रहे।[118]

अध्याय 30

कम्बोज (पामीर) जनपद में जैन धर्म

यह प्रश्नवाहन (पेशावर) से उत्तर की ओर स्थित था। यहा पर जैन धर्म की महती प्रभावना और विस्तार था। इस जनपद मे विहार करने वाले श्रमण संघ कम्बोजा या कम्बोजी गच्छ के नाम से प्रसिद्ध थे। गाधारा गच्छ और कम्बोजी गच्छ 17वी शताब्दी तक विद्यमान थे। तक्षशिला के उजाडे जाने के समय, तक्षशिला मे बहुत से जैन मन्दिर और स्तूप विद्यमान थे।

अध्याय 31

अरबिया में जैन धर्म

इस्लाम के फैलने पर अरबिया स्थित आदिनाथ, नेमिनाथ और बाहुबली के मन्दिर और अनेक मूर्तिया नष्ट की गई थी। अरबिया स्थित पोदनपुर जैन धर्म का गढ था और वहां की राजधानी थी तथा वहा बाहुबली की उत्तुंग प्रतिमा विद्यमान थी। आदिनाथ (ऋषभदेव) को अरबिया में बाबा आदम कहा जाता है। मौर्य सम्राट सम्प्रति के शासन काल में वहां और फारस में जैन सस्कृति का व्यापक प्रचार हुआ था तथा वहा अनेक जैन बस्तिया विद्यमान थीं। मक्का की मस्जिद स्थित सगे-अस्वद, जिसका कि हज

यात्री बोसा लेते हैं, पोदनपुर स्थित ऋषभ प्रतिमा का ही अंश है।

मक्का में इस्लाम की स्थापना के पूर्व वहां जैन धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार था। महाकवि रत्नाकर विरचित कन्नड़-काव्य "भरतेश वैभव" के अनुसार, जब सम्राट भरत मक्का गए तो वहां के राजाओं और जनता ने भरत का स्वागत किया था। वहां पर अनेक जैन मनिदर विद्यमान थे। इस्लाम का प्रचार होने पर जैन मूर्तिया तोड दी गई और मन्दिरों को मस्जिद बना लिया गया। इस समय वहां जो मस्जिदें हैं, उनकी बनावट जैन मन्दिरों (बावन चैत्यालयों) के अनुरूप है। इस बात की पुष्टि जेम्स फर्ग्यूसन ने अपनी *"विश्व की दृष्टि में"* नामक प्रसिद्ध पुस्तक के पृष्ठ 26 पर की है। मध्यकाल में भी जैन दार्शनिको के अनेक संघ बगदाद और मध्य एशिया गए थे और वहां अहिंसा धर्म का प्रचार किया था।

अध्याय 32

इस्लाम और जैन धर्म

इस्लाम का प्रवर्तन हजरत मुहम्मद से हुआ है। मुहम्मद साहब स्वय तो प्रचलित अर्थो मे सन्यासी नही थे किन्तु उनको दैवी उपदेशो का दर्शन और ज्ञान मरुस्थलो मे एकान्त जीवन बिताने और तप करने के बाद ही हुआ था। बाद में तो सूफी, दरवेश, ख्वाजा, पीर आदि अनेक गृहत्यागी सन्यासियो के सम्प्रदाय इस्लाम का प्रधान अग बन गए। इस्लाम में सन्यास का जो प्रवेश हुआ है वह ईसाई सन्यासी सम्प्रदायो, ईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया मे सर्वत्र बसे जैन श्रमणों और बौद्ध सम्प्रदायो तथा कश्मीर, सिन्ध और निकटवर्ती क्षेत्रों के हिन्दू सन्यासियों के साथ सम्पर्क का ही परिणाम है। इस्लाम के कलदरी सम्प्रदाय के लोग जैन सस्कृति से विशेष प्रभावति रहे है तथा वे जैन धर्म के अहिंसा आदि सिद्धान्तो को मानते हैं।

हजरत मुहम्मद के पूर्व मक्का में जैन धर्म विद्यमान था। मक्का में इस्लाम का प्रचार होने पर उन मन्दिरों की मूर्तियां तोड दी गई और उन मन्दिरों को मस्जिद बना लिया गया। इस समय वहां पर जो मस्जिदें हैं,

उनकी बनावट जैन मन्दिरों (बावन चैत्यालयो) के अनुरूप हैं।

इब्न-अन-नजीम के अनुसार, अरबो के शासन काल में यहिया-इब्न-खालिद बरमकी ने खलीफा के दरबार और भारत के साथ अत्यन्त गहरा सम्बन्ध स्थापित किया। उसने बड़े अध्यवसाय और आदर के साथ भारत के हिन्दु, बौद्ध और जैन विद्वानों को निमन्त्रित किया। प्राचीन काल से ही मक्का में जैन धर्म का व्यापक प्रचार था। मक्का में इस्लाम का प्रचार होने पर जैन मन्दिरो की मूर्तियां नष्ट कर दी गई और उन मन्दिरों की बनावट से भी होती है। वास्तुकला मर्मज्ञ फर्ग्यूसन ने अपनी पुस्तक *"विश्व की दृष्टि में"* लिखा है कि मक्का में भी मोहम्मद साहब के पूर्व जैन मन्दिर विद्यमान थे, किन्तु काल की कुटिलता से जब जैन लोग उस देश मे न रहे तो मधुमती के दूरदर्शी श्रावक मक्का स्थित जैन मूर्तियों को वहा से ले आये थे उनकी प्रतिष्ठा उन्होने अपने नगर मे करा दी थी जो आज भी विद्यमान ह।

रोमानिया, नार्वे, आस्ट्रिया, हगरी, ग्रीस या मैसिडोनिया के निवासी मिश्रियो के अनुगामी थे। वे जैन धर्मानुयायियों के उपदेशो से प्रभावित थे। यूनानियो के धार्मिक इतिहास से भी ज्ञात होता है कि उनके देश में जैन सिद्धान्त प्रचलित थे। पाइथागोरस,[32] पाइरो[33] (पिर्रहो), प्लोटीनस आदि महापुरुष श्रमण धर्म और श्रमण दर्शन के मुख्य प्रतिपादक थे।

इनमे से पाइथागोरस ने पार्श्वनाथ-महावीर काल में, छठी शताब्दी ईसा पूर्व मे भारत की यात्रा की थी। उसे श्रमणो और ब्राह्मणों ने एलोरा और एलीफेन्टा के मन्दिर दिखाये थे और उसे यूनानाचार्य की आरम्भिक उपाधि प्रदान की थी। उसे आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म मे आस्था थी।

इसी प्रकार, पाइरो[133,द्ध] (पिर्रहो) और प्लोटिनस, अपोलो और दमस ने भी भारत आकर जैन दीक्षा ग्रहण की थी। ग्रीक फिलासफर पिर्रहो ;चैपतीवद्ध ईसा से पूर्व की चौथी शताब्दी में भारत आया था और उसने जैन साधुओं से विधाध्ययन किया था। बाद में पाइरों ने यूनान में जैन सिद्धान्त का प्रचार किया था। वह स्याद्वाद के सिद्धान्त का प्रचारक था। यूनान का प्राचीन यूनानी डायोनीशियन धर्म भी जैन सिद्धान्तों से प्रभावित था। जैनों की भांति प्राचीन यूनानी दिगम्बर मूर्तियों के उपासक थे और आत्मा की मुक्ति और पुनर्जन्म में आस्था रखते थे तथा मौनव्रत और

अहिंसा पर बल देते थे।

एथेन्स में दिगम्बर जैन सन्त श्रमणाचार्य का चैत्य विद्यमान है, जिससे प्रकट है कि यूनान मे जैन धर्म का व्यापक प्रसार था। प्रोफेसर रामस्वामी आयगार ने ठीक ही कहा है कि बौद्ध और जैन श्रमण अपने-अपने धर्मों के प्रचारार्थ यूनान, रोमानिया और नार्वे तक गए थे। नार्वे के अनेक परिवार आज भी जैन धर्म का पालन करते है और उनका उपनाम जैन सूचक या तदनुरूप है। सुप्रसिद्ध जैन आचार्य सुशील कुमार जी ने अपनी विश्वव्यापी जैन धार्मिक यात्राओं में नार्वे के ऐसे कुछ जैन परिवारों से सम्पर्क भी किया था।

आस्ट्रिया और हंगरी में भूकम्प के कारण भूमि से बुडापेस्ट नगर के एक बगीचे से महावीर स्वामी की एक प्राचीन मूर्ति हस्तगत हुई थी। अतः यह स्वत सिद्ध है कि वहां जैन श्रावकों की अच्छी बस्ती थी। देशो और नगरों मे नामो में यूरोप के जर्मन और जर्मनी शब्दो का श्रमण और श्रमणी शब्दों से तथा "सारावाक" शब्द का "श्रावक" शब्द से साम्य है।

अध्याय 33

ईसाई धर्म और जैन धर्म

ईसा से कई शताब्दी पूर्व श्रमण सन्यास की परम्परा अरब, मिश्र, इजराइल और यूनान में जड पकड चुकी थी। सीरिया मे निर्जनवासी श्रमण सन्यासियों के संघ और आश्रम स्थापित थे जो अत्यन्त कठोर तप करते थे। स्वयं ईसा के दीक्षागुरु यूहन्ना इसी सम्प्रदाय के थे। ईसा ने भी भारत आकर सन्यास और जैन तथा भारतीय दर्शनों का अध्ययन किया था। आज भी भारत में सबसे प्राचीन ईसाई "सीरियाई ईसाई" हैं जो ईसा मसीह के प्रत्यक्ष शिष्य संत थामस की शिष्य परम्परा में है। सीरियाई ईसाइयों की जीवनचर्या श्रमण सन्यासियों से अधिक भिन्न नहीं हैं।

ईसा मसीह ने बाइबिल में जो अहिंसा का उपदेश दिया था, वह जैन संस्कृति और जैन सिद्धान्त के अनुरूप है। इस उपदेश में जैन संस्कृति की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

अध्याय 34

स्कॅंडिनेविया में जैन धर्म

कर्नल टाड अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ *"राजस्थान"* , *।ददसे दक ।दजपुनपजपमे व ित्रेंजींदद्ध* में लिखते हैं कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चार बुद्ध या मेधावी महापुरुष हुए हैं। इनमें पहले आदिनाथ या ऋषभदेव थे, और दूसरे नेमिनाथ थे। ये नेमिनाथ ही स्कॅंडिनेविया निवासियों के प्रथम औडन तथा चीनियों के प्रथम फो नामक देवता थे।" डा. प्राणनाथ विद्यालंकार के अनुसार, सुमेर जाति मे उत्पन्न बाबुल के खिल्दियन सम्राट नेबुचदनेजर ने द्वारका जाकर ईसा पूर्व 1140 के लगभग गिरनार के स्वामी नेमिनाथ की भक्ति की थी और वहां नेमिनाथ का एक मन्दिर बनवाया था। सौराष्ट्र में इसी सम्राट नेबुचदनेजर का एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है।

अध्याय 35

कैश्पिया में जैन धर्म

कश्यप गौत्री तीर्थकर पार्श्वनाथ धर्म प्रचारार्थ मध्य एशिया के बलख (क्रियापिशि या कैश्पिया) नगर गये थे। उसके आसपास के नगरो अमन, समरकन्द आदि मे जैन धर्म प्रचलित था। इसका उल्लेख ईसा पूर्व पांचवी-छटी शती के यूनानी इतिहास मे किया गया है। यहा के जैन श्रावक आयोनियन या आरफिक कहलाते थे। बोक ;ठवसाद्ध मे जो नये विहार और ईंटों के खण्डहर निकले हैं, वे वहां पर कश्यपों के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। महावीर का गोत्र कश्यप था और इनके अनुयायी भी कभी-कभी काश्यपों के नाम से विख्यात हुए थे। भौगोलिक नाम कैस्पिया **(Caspia)** का कश्यप के सादृश है। अतः यह बिल्कुल सभव है कि जैन धर्म का प्रचार कैस्पिया, रूमानिया और समरकन्द, बोक आदि नगरों में रहा था।[33.इद्ध]

अध्याय 36

ब्रह्मदेश (बरमा) (स्वर्णभूमि) में जैनधर्म

जैन शास्त्रों में ब्रह्मदेश को स्वर्णद्वीप कहा गया है। जगत प्रसिद्ध जैनाचार्य कालकाचार्य और उनके शिष्यगण स्वर्णद्वीप में निवास करते थे। उनके प्रशिष्य श्रमण सागर अपने गण सहित वहा पहले ही विद्यमान थे। वहां से उन्होने आसपास के दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों में जैन धर्म का प्रचार किया था।[34] थाईलैंड स्थित नागबुद्ध की नागफण वाली प्रतिमाये पार्श्वनाथ की प्रतिमायें है।

अध्याय 37

श्रीलंका में जैन धर्म

भारत और लंका (सिंहलद्वीप) के युगो पुराने सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। सिहलद्वीप में प्राचीन काल में जैन धर्म का प्रचार था। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में कहा गया है कि राजा पांडुकामय ने चतुर्थ शती ईसा पूर्व में अपनी राजधानी अनुराधापुर में दो जैन निर्गन्थो के लिए एक मन्दिर और एक मठ बनवाया था। यह मन्दिर और मठ 38 90 ईसा पूर्व तक राजा वट्टगामिनि के काल तक विद्यमान रहा। ये जैन स्मारक 21 राजाओ के शासन काल तक विद्यमान रहे और बाद में बौद्ध संघाराम बना लिये गये। सम्पूर्ण सिंहलद्वीप के जनजीवन पर जैन संस्कृति की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। जैन मुनि यशकीर्ति ने ईसा काल की आरम्भिक शताब्दियों में सिंहलद्वीप जाकर वहां जैन धर्म का प्रचार किया था। जैन श्रावक सदैव समुद्र पार जाते थे, इसका उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। महावंश के अनुसार, ईसा पूर्व 430 में जब अनुराधापुर बसा तक जैन श्रावक वहां विद्यमान थे। वहां अनुराधापुर के राजा पांडुकामय मे ज्योतिय निग्गंठ के लिए घर बनवाया था। राजा पांडुकामय ने कुमण्ड निग्गंठ के लिए एक देवालय बनवाया था।

अति प्राचीन काल में वस्तुतः सिंहलद्वीप मे विधाधर वंश की ऋक्ष जाति का निवास था। ऋषभपुत्र सम्राट् भरत चक्रवर्ती ने इस द्वीप की विजय करके वहा जैन धर्म और श्रमण संस्कृति का प्रचार किया था। रामायण काल में ऋक्षवंशी रावण लंका का महापराक्रमी जैन नरेश था। तदनन्तर बाईसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि का श्रीलंका में मंगल विहार हुआ था जिनकी स्मृति में श्रीलंका मे अरिष्टनेमी विशाल जैन विहार का निर्माण भी किया गया था। पार्श्वनाथ के तीर्थ काल में करकंडु नरेश ने भी सिंहल की यात्रा की थी।

मौर्य सम्राट् सम्प्रति ने श्रीलका मे श्री दिगम्बर मुनियो को धर्म प्रचार के लिए भेजा था, जैसा कि बौद्ध ग्रन्थ महावश से प्रकट होता है।

क्रौंच द्वीप, सिंहलद्वीप (लंका) और हस द्वीप में जैन तीर्थंकर सुमतिनाथ की पादुकाएं थीं। पारकर देश और कासहद मे भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा थी तथा रत्नाद्वीप में जैन व्यापारियों का निवास था।

प्राचीन जैन साहित्य मे इस बात के प्रचुर मात्रा मे उल्लेख मिलते है कि जैन साधुओ ने धर्मप्रचारार्थ भारत से श्रीलंका की अनेकानेक यात्राये कीं। उत्कल (उडीसा) के सम्राट खारवेल ने भारत तथा विदेशों में समय-समय पर जैन साधु और धर्म प्रचारक भेजे। जैन वाङ्मय मे उल्लेख मिले है कि अनेक जैन सघ भारत से श्रीलंका, जावा, सुमात्रा, श्याम (थाईलैण्ड), वियतनाम आदि गये)। श्रीलंका मे सिगिरिया प्रदेश में अभयगिरि में एक सुविशाल जैन मठ विद्यमान था जहा बडी सख्या में जैन साधु विद्यमान थे। अभयगिरि प्राचीन काल में राजधानी थी और राजधानी स्थित जैन साधु श्रीलंका तथा दक्षिण पूर्व के अन्य देशों में विहार करते थे। वस्तुतः श्रीलंका में जैन धर्म प्राचीन काल से सुस्थापित था। श्रीलंका के प्राचीन वाङ्मय एव अन्य प्रमाणों से साबित होता है कि खल्लाटगा (109 से 103 ईसा पूर्व) के शासन काल मे अभयगिरि स्थित जैन मठ एवं विहार विशेष रूप से प्रभावी और लोकप्रिय था। राजा बट्टगमिनी के शासन काल से पहले जैन मठ के मुनि श्रीगिरि का विशेष प्रभाव था। बाद में बौद्ध हो जाने के कारण राजा वट्टगमिनी के शासन काल (89 से 77 ईसा पूर्व) में उसके धर्म परिवर्तन के कारण जैन मठ को घोर हानि पहुंची और अन्ततोगत्वा जैन मठ को बौद्ध विहार में सम्मिलित कर लिया गया।

श्रीलका के बाद के इतिहास से ज्ञात होता है कि बाद में जब राजा योगाधाना कास्सपा-1 द्वारा निकाले जाने पर अट्ठारह वर्ष तक भारत में निर्वासन में रहा तब उसने श्रीलंका के सेनापति और विशाल जैन समुदाय के साथ गुप्त रूप से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखा था तथा श्रीलंका के जैन साधु वर्ग के सहयोग और सहायता से सन् 495 में पुनः विजयी होकर श्रीलका का शासक बना, यद्यपि बाद मे मोगालाना बौद्ध लोगों के श्रीलंका मे समिरिया, अनुराधापुर आदि अनेक जैन केन्द्र और विशाल मठ रहे है। श्रीलंका में जैन श्रावकों और साधुओं ने स्थान-स्थान पर चौबीसों जैन तीर्थंकरों के भव्य मन्दिर बनवाये। सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद फर्ग्यूसन ने लिखा है कि कुछ युरोपियन लोगों ने श्रीलका मे सात और तीन फणो वाली मूर्तियो के चित्र लिए थे। सात या नौ फण पार्श्वनाथ की मूर्तियों पर और तीन फण उनके शासनदेव धरणेन्द्र और शासनदेवी पद्मावती की मूर्ति पर बनाये जाते हैं। भारत के सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता श्री पी.सी. राय चौधरी ने श्रीलंका में जैन धर्म के विषय में विस्तार से शोध खोज की है।

विक्रम की 14वीं शती मे हो गये जैनाचार्य जिन प्रभसूरि ने अपने चतुरशिति (84) महातीर्थ नामक कल्प में यहां श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर के महातीर्थ का उल्लेख किया है।[143]

अध्याय 38

तिब्बत देश में जैन धर्म

तिब्बत के हिमिन मठ में रूसी पर्यटक नोटोविच ने पाली भाषा का एक ग्रन्थ प्राप्त किया था। उसमें स्पष्ट लिखा है कि ईसा ने भारत तथा भोट देश (तिब्बत) जाकर वहा अज्ञातवास किया था और वहां उन्होंने जैन साधुओं के साथ साक्षात्कार किया था।[35]

हिमालय क्षेत्र में तिब्बत में महावीर का विहार हुआ था तथा वहां निवसित वर्तमान डिंगरी जाति के पूर्वज तथा गढ़वाल और तराई के क्षेत्र में निवसित डिमरी जाति के पूर्वज जैन थे। "डिंगरी" और "डिमरी" शब्द "दिगम्बरी" शब्द के अपभ्रंश रूप हैं। वहां जैन पुरातात्विक सामग्री प्रचुरता

से प्राप्त होती है।

जैन तीर्थ अष्टापद (कैलाश पर्वत) हिम प्रदेश के नाम से विख्यात है जो हिमालय पर्वत के बीच शिखरमाला में स्थित है और तिब्बत में है।

अध्याय 39

अफगानिस्तान में जैन धर्म

अफगानिस्तान प्राचीन काल में भारत का भाग था तथा अफगानिस्तान में सर्वत्र जैन श्रमण धर्मानुयायी निवास करते थे। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व संयुक्त महानिदेशक श्री टी.एन रामचन्द्रन ने अफगानिस्तान गए एक शिष्ट मण्डल के नेता के रूप मे यह मत व्यक्त किया था कि "मैने ई छठी-सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध चीनी यात्री "ह्वेनसाग" के इस कथन का सत्यापन किया है कि यहां जैन तीर्थकरो के अनुयायी बडी सख्या मे हैं जो लूणदेव या शिश्नदेव की उपासना करते है।

अफगानिस्तान में उस काल में ह्वेनसांग ने सैकडों जैन मुनि देखे थे। उस समय एलेग्जेन्ड्रा मे जैन धर्म और बौद्ध धर्म का व्यापक प्रसार था। उस काल मे उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त एव अफगानिस्तान में विपुल सख्या में जैन श्रमण विहार करते थे। सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय तक्षशिला मे जैन आचार्य दोलामस और उनका शिष्यवर्ग था। कृषि युग के प्रारम्भ से लेकर सिकन्दर के समय तक तक्षशिला मे निर्बाध जैन मुनियों का विहार होता था। सिकन्दर के साथ कालानस मुनि (मुनि कल्याण विजय) यूनान गये थे। पार्श्वनाथ का विहार भी अफगानिस्तान और कश्मीर क्षेत्र मे हुआ था।

बौद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 686 ईसवी से 712 ईसवी तक भारत भ्रमण किया था। उसके यात्रा विवरण के अनुसार, अफगानिस्तान के कपिश देश में दस के करीब देवमन्दिर (जैन मन्दिर) और एक हजार के करीब अन्य मतावलम्बियों के मन्दिर हैं। यहां बडी सख्या में निग्रन्थ (जैन मुनि) भी विहार करते हैं।[142]

गांधार (प्राचीन नाम आश्वकायन) में सिर पर तीन छत्रो सहित

ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति मिली है जो 175 फुट ऊंची है और उसके साथ 23 अन्य तीर्थंकरों की छोटी प्रतिमायें पहाड़ को तराश कर बनाई गई थी। दूर-दूर के लाग यहां जैन तीर्थ यात्रा करने के लिए आते थे।

चीनी यात्री ह्वेनसांग (686-712 ईसवी) के यात्रा विवरण के अनुसार, कपिश देश में 10 जैन देव मन्दिर हैं। यहां निर्ग्रन्थ जैन मुनि भी धर्म प्रचारार्थ विहार करते है।[115] काबुल में भी जैन धर्म का प्रसार था। वहां जैन प्रतिमायें उत्खनन में निकलती रहती है। (सी.जे. शाह — "*जैनिस्म इन नारदर्न इंडिया*, लंदन, 1932)

अध्याय 40

हिन्देशिया, जावा, मलाया, कंबोडिया आदि देशों में जैन धर्म

भारतीय दर्शन और धर्म, पुरातत्व और साहित्य, सगीत और चिकित्सा के क्षेत्र में इन द्वीपों के सांस्कृतिक इतिहास और विकास में भारतीयों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन द्वीपों के प्रारम्भिक आप्रावासियों का अधिपति सुप्रसिद्ध जैन महापुरुष कौंडिन्य था जिसका कि जैनधर्म कथाओं में विस्तार से उल्लेख हुआ है। जैन व्यापारियों की जावा द्वीप, मलाया द्वीप, सुमात्राद्वीप और अन्य ऐसे ही द्वीपों की यात्राओं के जैन वृत्तांत इतने रोचक और सही है कि विद्वानों ने उन्हें ऐतिहासिक महत्त्व का माना है। आरंम्भिक मध्य युग में जब भारतीय अधिवासी दक्षिण भारत से दक्षिण पूर्वी एशिया और हिन्देशिया के द्वीपों में बसने गये तो दक्षिण भारत में जैन धर्म का व्यापक प्रसार था। अतः स्वाभाविक है कि वे अपने साथ जावा और मलाया आदि में जैन धर्म भी ले गये। कैन्टी का भारतीय मूल का प्रथम राजवंश नागों से सम्बन्धित था जिनका कि जैन साहित्य में आरम्भ से ही विस्तृत उल्लेख मिलता है। कम्बोडिया में बसे भारतीय अधिवासियों के प्रथम पूर्वज कौंडिन्य का उल्लेख अर्हत् (जैन) वैद्यों में किया गया है। इन द्वीपों के भारतीय अधिवासी विशुद्ध शाकाहारी थे। उन देशों से प्राप्त मूर्तियां तीर्थंकर मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। वहां 52 चैत्यालय भी मिले

हैं जिस संख्या का जैन परम्परा में बड़ा महत्व है। जैन परम्परा के अनुसार अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर नन्दीश्वर द्वीप के 52 चैत्यालयों की वर्ष में तीन बार आराधना की जाती है। यहां के नवीं शताब्दी के एक शिलालेख में 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का उल्लेख आया है। इसमें "कल्याण कारक" नामक जैन चिकित्सा ग्रन्थ का भी उल्लेख हुआ है।

अनाम (चम्पा), टोन्किन (दक्षिण चीन), बर्मा, सुमात्रा और मलय द्वीप समूह के लिए सुवर्ण भूमि नाम प्रचलित था। विक्रमी संवत् 1200 के आसपास जैन आचार्य कालक (क्षमा श्रमण) का सुवर्ण भूमि में विहार हुआ था। उन्होंने अनाम (चम्पा) तक विहार किया था। आचार्य सागरश्रमण और चारुदत्त का भी (ईसा पूर्व 74-69 में) विहार हुआ था।

निमित्त शास्त्र के पंडित एवं अनेक ग्रन्थों के रचयिता कालकाचार्य (वंकालकाचार्य) और सागर श्रमण और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का ईसा की पहली या दूसरी शती में सुवर्ण भूमि गमन जैन धर्म के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसका समर्थन टालेमी एवं वासुदेव हिण्डी से भी होता है।

इन प्रदेशों की सस्कृति पर व्यापक श्रमण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कम्बुज, चम्पा आदि के प्राथमिक भारतीय राजवंश नाग जातीय थे। इन सभी क्षेत्रों में मद्य, मांस का प्रचार नहीं था तथा पशु-बलि आदि का अभाव था। वहां के अनेक शिलालेखों मे पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों तथा जैन आयुर्वेद ग्रन्थ "कल्याण कारक" आदि का उल्लेख पाया जाता है। वहां वर्ष का आरम्भ महावीर निर्वाण वर्ष की भांति कार्तिक मास से होता है। समस्त दक्षिण पूर्वी एशिया में सर्वत्र प्रांत, नागबुद्ध की मानी जाने वाली प्रसिद्ध मूर्तियां श्री हरिसत्य महाचार्य आदि इतिहास-पुरातत्त्वज्ञों के अनुसार तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्त्तिया हैं।

ईसा की पहली-दूसरी शताब्दियों मे भारत का पूर्व के देशो के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। दक्षिण बर्मा से पैदल रास्ते से जैनाचार्य आगे सुवर्ण भूमि के प्रदेशों में गये, जहां उनके आहार-विहारार्थ जैन गृहस्थ बड़ी संख्या में पहले ही निवास करते थे।

अध्याय 41

नेपाल देश में जैन धर्म

नेपाल का जैनधर्म के साथ प्राचीन काल से ही बड़ा सम्बन्ध रहा है। लिच्छवि काल में बिहार से नेपाल में आये लिच्छिवि जैन धर्मावलम्बी थे। आचार्य भद्रबाहु महावीर निर्वाण संवत् 170 में नेपाल गये थे और नेपाल की कन्दराओं में उन्होंने तपस्या की थी जिससे सपूर्ण हिमालय क्षेत्र में जैन धर्म की बड़ी प्रभावना हुई थी।[134] नेपाल का प्राचीन इतिहास भी इस बात का साक्षी है। उस क्षेत्र की बद्रीनाथ, केदारनाथ एव पशुपतिनाथ की मूर्तिया जैन मुद्रा पद्मासन में है और उन पर ऋषभ प्रतिमा के अन्य चिह्न भी विद्यमान हैं।

19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ और 21वें तीर्थंकर नमिनाथ नेपाल में ही जनकपुर धाम (मिथिला नगरी) में पैदा हुए थे और दोनों तीर्थंकरों के चार-चार कल्याणक भी यहां हुये थे। नेपाल में हजारों वर्ष पूर्व में श्रमण सस्कृति की निरन्तर प्रभावना बनी रही है जिसके चिह्न आज भी सैकड़ों स्थानों पर लक्षित होते हैं। ऋषभ पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने नेपाल के हरिहर क्षेत्र में काली गंडकी नदी के तटपर पुलहाश्रम में तपस्या की थी।

जब आचार्य भद्रबाहु नेपाल की कन्दराओं में तपस्या कर रहे थे तब 500 जैन मुनियों का संघ नेपाल आया था और उसने भद्रबाहु से जैनागम का समस्त ज्ञान प्राप्त किया था। इसके बाद नेपाल में जैन धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में अनेक जैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें प्रश्न व्याकरण विशेष उल्लेखनीय हैं। पशुपतिनाथ के पवित्र क्षेत्र में जैन तीर्थंकरों की अनेक मूर्तियां विद्यमान हैं।

नेपाल की राजधानी काठमाण्डू की बागमती नदी के किनारे पाटन के शखमूल नामके स्थान से खुदाई में लगभग 1400 वर्ष पुरानी भगवान 1008 चन्द्रप्रभु स्वामी की एक खड्गासन मूर्ति प्राप्त हुई है। संयुक्त जैन समाज द्वारा नेपाल में एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ हो चुका है। इसके लिए एक उदार जैन बन्धु ने लगभग ढाई करोड़ की भूमि

दान में दी है। वर्तमान नेपाल में लगभग 500 परिवार जैन धर्म के मानने वाले है।

नेपाल की राजधानी काठमांडों मे सन् 1980 मे स्थापित भगवान महावीर जैन निकेतन के विशाल परिसर में एक नवीन जैन मन्दिर का निर्माण कार्य जोर शोर से चल रहा है जिसे दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो जैन सम्प्रदाय मिल कर बना रहे है। निकेतन में भूतल पर दिगम्बर जैन मन्दिर होगा जिसमें काले पाषाण की ऋषभदेव की काले पाषाण की 37 इंच ऊंची पद्मासन प्रतिमा स्थापित की जायेगी। तथा निकेतन की ऊपर की मंजिल पर, श्वेताम्बर जैन मन्दिर मे भगवान मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं महावीर की प्रतिमायें विराजमान की जायेंगी। नेपाल के महाराजा श्री वीरेन्द्र विक्रम शाह 6 अप्रैल, 1996 को इसका उद्घाटन करने वाले थे। निकेतन परिसर मे 25 कमरों का एक भव्य भवन एव भद्रबाहु सभागार आदि होंगे।

अध्याय 42

भूटान देश में जैन धर्म

भूटान में जैन धर्म का खूब प्रसार था तथा जैन मन्दिर और जैन साधु-साध्वियां विद्यमान थे, जहां जैन तीर्थयात्री समय-समय पर जाते रहे हैं। विक्रमी संवत् 1806 मे दिगम्बर जैन तीर्थ यात्री लामचीदास गोलालारे ब्रह्मचारी भूटान देश से जैन तीर्थो की यात्रा के लिए गया था जिसके विस्तृत यात्रा विवरण (जैन शास्त्र भण्डार, तिजारा (राजस्थान))[91] की 108 प्रतियाँ भिन्न-भिन्न जैन शास्त्र भंडारों में सुरक्षित हैं।

अध्याय 43

पाकिस्तान के परिवर्ती क्षेत्रों में जैन धर्म

ऋषभदेव ने भरत को अयोध्या, बाहुबली को पोदनपुर तथा शेष 98 पुत्रों

को संसार भर के शेष देश प्रदान किये थे। बाहुबली ने बाद में अपने पुत्र महाबली को पोदनपुर राज्य सौंपकर मुनिदीक्षा ली। पोदनपुर वर्तमान पाकिस्तान क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत के निकट सिन्धु नदी के सुरम्य एवं रम्यक देश उत्तरापथ में था और जैन संस्कृति का अद्वितीय जगत-विख्यात विश्वकेन्द्र था। महाभारत (द्रोणपर्व) में भी पोतन (पोतन्य) का उल्लेख हुआ है। कालान्तर में पोदनपुर अज्ञात कारणो से नष्ट हो गया।

पाकिस्तानी क्षेत्र एव सम्पूर्ण परिवर्ती देशो में जैन संस्कृति के सार्वभौम एवं सार्वयुगीन प्रचार-प्रसार का लगभग आठ हजार वर्ष से भी अधिक पुराना इतिहास मिलता है। ऋषभ युग से लेकर नेमिनाथ के तीर्थंकाल पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व मे जैन सस्कृति की व्यापक प्रभावना रही। नदी घाटी सभ्यताओं में सर्वाधिक ज्ञात सभ्यता सिन्धु घाटी सभ्यता है जो पाकिस्तान और उसके परिवर्ती क्षेत्रों में फैली हुई थी। भारत, पाकिस्तान और परिवर्ती क्षेत्रों में लगभग 250 स्थानों पर हुए उत्खननों से इस व्यापक द्रविड़-विधाधर-व्रात्य-पणि-नाग-असुर संस्कृति पर प्रकाश पड़ा है। इसका उत्कर्षकाल लगभग 4000 ईसा पूर्व रहा है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस सभ्यता के परम आराध्य एवं उपास्य थे, जैसा कि ऋग्वेद की 141 ऋषभवाची ऋचाओं, केशीसूक्त एवं भारत जातिपरक उल्लेखों से तथा अथर्ववेद के व्रात्य काण्ड, विभिन्न उपनिषदों एवं सुविस्तृत पुराण साहित्य से प्रकट है। उसी युग में हड़प्पा-पूर्व अवहड़प्पी सस्कृतियों की विद्यमानता के भी संकेत मिले है जो वस्तुतः उसी परम्परा की जैन श्रमण संस्कृतियां थीं। सिन्धु सभ्यता काल में जैन पणि व्यापारियों का विश्वव्यापी व्यापार साम्राज्य था जो हजारों वर्ष तक कायम रहा। सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों से प्राप्त सैकडों मुद्राओं के सूक्ष्म विश्लेषण एवं सांस्कृतिक निर्वचन से भी इसी वस्तुस्थिति की पुष्टि होती है। पार्श्वनाथ-महावीर युग (800-600 ईसा पूर्व) में भारत में 16 जैन धर्म-बहुल महाजनपद विद्यमान थे जिनके अन्तर्गत वर्तमान पाकिस्तान क्षेत्र, सिन्धु सौवीर एवं गांधार भी आता था। 326 ईसा पूर्व में सिकन्दर के आक्रमण और जैन महाराजा पुरु के साथ हुए उसके युद्धों के विवरणों एवं यूनानियों के इतिहास विवरणों, मुनि कल्याण विजय, जैनाचार्य दौलामस (धृतिसेन) आदि विषयक उल्लेखों से भी इसी बात की पुष्टि होती है। मौय सम्राट् चन्द्रगुप्त, अशोक, सम्प्रति

आदि के शासन काल में सम्पूर्ण भारत तथा पाकिस्तान क्षेत्र में जैन धर्म की व्यापक प्रभावना रही। अशोक और सम्प्रति ने सुदूरदेशों में जैन धर्म का प्रचार किया था। महाकवि कल्हणकृत राजतरंगिणी में कश्मीर, पाकिस्तान क्षेत्र एवं उत्तरी भारत में जैन संस्कृति के व्यापक प्रसार के उल्लेख मिलते हैं। आइने अकबरी में अबुल फजल ने लिखा है कि राजा अशोक ने जैन धर्म कश्मीर में फैलाया था। मेगस्थनीज, ह्वेनसांग आदि के ऐतिहासिक विवरणों से भी इसी बात की पुष्टि होती है।

अध्याय 44

तक्षशिला जनपद में जैन धर्म

सम्पूर्ण पाकिस्तानी क्षेत्र में जैन संस्कृति और सभ्यता की सर्वत्र सार्वभौम प्रभावना रही तथा सर्वत्र दिगम्बर जैन मुनि विहार करते थे। पुरुषपुर (पेशावर), गांधार, तक्षशिला, सिंहपुर आदि जैन संस्कृति के प्रसिद्ध प्रभावना केन्द्र रहे।

दशरथ पुत्र भरत के पुत्र तक्ष के नाम पर स्थापित तक्षशिला अति प्राचीन काल में शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था तथा जैन धर्म के प्रचार का भी महत्त्वपूर्ण केन्द रहा। महामुनि चाणक्य, प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी एवं वैद्यशिरोमणि जीवक ने तक्षशिला में ही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। सर जॉन मार्शल ने तक्षशिला की खुदाई के आधार पर वहां बहुत-सी प्राचीन इमारतों के अवशेष और लक्षण ढूंढ निकाले हैं[36]। जैन परम्पराओं से पता चलता है कि वह स्थान बाहुबली से सम्बन्धित था जो जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के पुत्र थे और बाद में वे जैन मुनि हो गये थे। आवश्यक-निर्युक्ति[37] एव आवश्यक-चूर्णी[38] से पता चलता है कि बाहुबलि ने तक्षशिला में धर्मचक्र की स्थापना की थी। जिनप्रभसूरि के विविध-तीर्थकल्प[39] में भी बाहुबली को तक्षशिला से सम्बन्धित बताया गया है। इस प्रकार, प्राचीन जैन परम्परा से सम्बन्धित होने के कारण ही जैन श्रमणों एवं श्रावकों के लिए यह स्थान तीर्थस्थल-सा हो गया था, जहां रहकर उन्होंने जैन धर्म एवं दर्शन का अनुसरण तथा प्रचार कार्य किया।

इसी प्रकार, सिंहपुर भी प्राचीन जैन प्रचार केन्द्र के रूप में विख्यात था। सम्राट हर्षवर्धन के काल में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यहां की यात्रा की थी जिसने इस स्थान पर जगह-जगह जैन श्रमणों का निवास बताया है[40]। जैन परम्परा में सिंहपुर को ग्यारहवें जैन तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म स्थान बताया गया है। कुछ विद्वानों की राय में, जैन ग्रन्थों में उल्लिखित सिंहपुर वाराणसी के पास स्थित सिंहपुरी है। किन्तु अनेक विद्वान इसे पंजाब का सिंहपुर मानते हैं।[41] यहां की खुदाई में बहुत सी जैन मूर्तियां मिली है जिससे स्पष्ट होता है कि यह स्थान जैन धर्म का केन्द्र था।[42]

अध्याय 45

सिंहपुर जैन महातीर्थ

सातवीं शताब्दी ईस्वीं में चीन यात्री ह्वेनसांग भारत भ्रमण करते हुए सिंहपुर आया था। एलेग्जेंडर कनिंघम के अनुसार, यह स्थान पंजाब (पाकिस्तान) में जेहलम जिले में जेहलम नदी के किनारे स्थित है। वहां एक जैन स्तूप के पास जैन मन्दिर और जैन शिलालेख भी था जहां जैन श्रावक दर्शनार्थ आते रहते थे और घोर तपस्या करते थे। यहां पर तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ और बाईसवें तीर्थंकर अरिष्ट नेमी आदि के मन्दिर थे जिनका जिनप्रभ सूरि ने भी उल्लेख किया है। यह जैन महातीर्थ मन्दिर 14वीं शताब्दी तक विद्यमान था। इस महा जैनतीर्थ का विध्वंस संभवतः सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन ने किया था। डॉ. बूह्लर की प्रेरणा से डॉ. स्टाइन ने सिंहपुर के जैन मन्दिरों का पता लगाने पर कटाक्ष से दो मील की दूरी पर स्थित "मूर्तिगांव में खुदाई से बहुत सी जैन मूर्तियां और जैन मन्दिरों तथा स्तूपों के खण्डहर प्राप्त किए जो 26 ऊंटों पर लादकर लाहौर लाये गए और वहां के म्युजियम में सुरक्षित किए गए।

अध्याय 46

ब्रह्माणी मन्दिर (ब्राह्मी देवी का मन्दिर) एवं जैन महातीर्थ

चम्बा घाटी के केन्द्रस्थल भरमौर की (जो कभी गद्दियारे राजाओं की राजधानी था) भौगोलिक खोजों से सिद्ध है कि वहां से एक मील की ऊंचाई पर स्थित काष्ठ मन्दिर में अधिष्ठित सिंहारुढ प्रतिमा ब्रह्मामणी की मानी जाती है। आदि काल में इस क्षेत्र पर ब्रह्मामणी देवी का अद्वितीय प्रभाव था। अत. उसी के नाम पर इस स्थान को ब्रह्मपुरी तथा इस भूमि को ब्रह्मामणी (ब्राह्मी) की भूमि माना जाता है। यहा चौरसिया का मैदान भी है जहां चौरासी धर्मो के प्रतीक चिह्न उत्कीर्ण हैं।

आदिकाल में इस स्थान पर ब्रह्मामणी देवी का एक विशाल मन्दिर था किन्तु काल के थपेडों में भी उसकी एक वेदी अक्षुण्ण बची रह गई है जिस पर पुष्पमय चित्रकारी है। डॉ कनिंघम की दृष्टि में वह जैन चित्रकारी है। (भरमौर का गणेश मन्दिर)। यह स्थान किसी समय श्रमण संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। "जब सिकन्दर तक्षशिला मे आया तो उसने अनेक जिम्नोसोफिस्ट-जैन साधुओं को रावी के तट पर पडे देखा था। उनकी सहनशीलता को उसने मान्य किया था और उनमें से एक को अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की थी। इन साधुओं में ज्येष्ठ थे आचार्य दौलामस। अवशिष्ट साधु उनके पास शिष्यवत् रहते थे। उन्होंने न तो स्वयं जाना स्वीकार किया और न दूसरो को जाने की आज्ञा दी, तब सिकन्दर उनमें से एक को ले जाने में किसी प्रकार सफल हो गया था। उस साधु के जाने के बाद ऐसा लगता है कि रावी के इस प्रदेश में अनेक जैन साधु पश्चिम और मध्य एशिया मे फैलते गए और वहा उन्होंने जैन धर्म का प्रसार एवं प्रचार किया।

इस क्षेत्र में जैन साधुओं की यह परम्परा एक लम्बे समय से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। आदि तीर्थकर ऋषभदेव नें वेदपूर्व काल में पंजाब और सीमान्त तथा पश्चिम एशिया अपने दूसरे पुत्र बाहुबली

को दिया था। वे इस प्रदेश के राजा थे। कल्प-सूत्र के अनुसार, "भगवान ने अपनी पुत्री ब्राह्मी, जो भरत के साथ सहजन्मा थी, बाहुबली को दी थी। उसका अधिवास इधर ही था। अन्त में वह प्रव्रजित होकर और सर्वायु को भोगकर सिद्धलोक को गई।"[94] वस्तुतः ब्राह्मी इस प्रदेश की महाराज्ञी थी। अन्त में, वह साध्वी-प्रमुख भी बनीं और उसने तप किया। वह लोकप्रिय हुई और आगे चलकर उसकी स्मृति में जनसाधारण ने भारतीय जनमानस की श्रद्धा स्वरूप उसके नाम पर कभी एक विशाल मन्दिर का निर्माण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि काल के अन्तराल में अन्य धर्मावलम्बियों ने उसे विनष्ट कर अपनी नई स्थापनायें की हों तथा वेदी अपनी सुन्दरता के कारण बच गई हो और उस पर गणेशजी की मूर्ति विराजमान कर दी गई हो। ऐसा भारत के अन्य अनेक स्थानों पर भी हुआ है।

मोहन-जो-दडो आदि की खुदाइयों में जो अनेकानेक सीलें प्राप्त हुई है, उन पर नग्न दिगम्बर मुद्रा मे योगी अंकित है, उनमे नाभिराय, ऋषभ, भरत, बाहुबली (बेल चढा हुआ अंकन) आदि सभी के तथा विविध प्रसंगों के अंकन है। वे सब शाश्वत जैन परम्परा के द्योतक हैं।

मोहनजोदडो, हडप्पा, कालीबंगा आदि दो सौ से अधिक स्थानों के उत्खनन से जो सीलें, मूर्तियां एवं अन्य पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई है, वे सब शाश्वत जैन परम्परा की द्योतक है। सीलो पर नग्न दिगम्बर मुद्रा मे योगी अकित है, उनमे ऋषभ, भरत, बाहुबलि आदि सभी के अंकन तथा सुसंमृद्ध विश्वव्यापी जैन परम्परा से सम्बद्ध विविध प्रसंगों एवं लौकिक-आध्यात्मिक अवसरो के अंकन है। उनमें से एक सील पर महातपस्वी बाहुबलि का चित्र भी है, एक ऐसा महातपस्वी तप करते हुए जिस पर बेलें पौड गई थीं। उक्त सील पर यह बेल चढ़ा हुआ चित्र ही अंकित है। मोहन-जो-दडो से उत्खनित सामग्री में नाभिराज की एक मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिसका राजमुकुट उतरा हुआ है। अनुमान है कि नाभिराज द्वारा ऋषभदेव के सर पर राजमानाङ्क पहनाने के बाद का यह चित्र है। आचार्य जिनसेन ने भी ऐसे ही एक चित्र की काव्यात्मक प्रस्तुति की है।[95] (आचार्य जिनसेन आदि पुराण, 16/232)।

अध्याय 47

कश्यपमेरु (कश्मीर जनपद) में जैन धर्म

कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी के अनुसार, कश्मीर-अफगानिस्तान का राजा सत्यप्रतिज्ञ अशोक जैन था जिसने और जिसके पुत्रों ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया तथा जैन धर्म का व्यापक प्रचार किया, जिनका काल पार्श्वनाथ से पूर्व का है। मौर्य सम्राट अशोक (273-236 ईसा पूर्व) जैन था तथा बाद में उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। आइने-अकबरी के अनुसार, अशोक ने कश्मीर में जैन-धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। इस बांत की पुष्टि कल्हणकृत रजतरंगिणी से भी होती है।

अध्याय 48

पाकिस्तान में जैन धर्म

सिन्ध का इतिहास बहुत प्राचीन है तथा पिछले हजारों वर्षों से इस क्षेत्र में जैनधर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार रहा। एक समय था जब सिन्ध की सीमा के अन्तर्गत अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, पश्चिमोत्तर सरहदी सूबा, पंजाब (पाकिस्तान) का उत्तरी भाग, भावलपुर, जैसलमेर आदि समाहित थे। गांधार, पश्चिमोत्तर कश्मीर, तक्षशिला, पेशावर आदि भी इसमें सम्मिलित थे जो सब अति विशाल सिन्धु-सौवीर जनपद के अंगभूत थे। पंजाब का दक्षिणी भाग सौवीर कहा जाता था।[97]

मार्शल के अनुसार, तक्षशिला में अनेक जैन स्तूप विद्यमान थे। तीर्थंकर[98] ऋषभदेव ने तक्षशिला में विहार किया था। हुएनसांग ने लिखा है कि सिंहपुर (जेहलम) स्थित एक जैन स्तूप में जैनी उपासना करते थे। तक्षशिला में प्राप्त स्मारकों में दो सिरों वाले बाज़ (eagle) पक्षी के चिन्ह वाले जैन मन्दिर मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में प्राचीन काल से जैन धर्म का व्यापक प्रसार था। बाज पक्षी चौदहवें जैन

तीर्थंकर अनन्तनाथ का लांछन (चिन्ह) था, इससे मार्शल के अनुसार प्रमाणित होता है कि ये मन्दिर जैन मन्दिर थे।

अध्याय 49

सिन्धु सौवीर जनपदों में जैन धर्म

सम्राट् सम्प्रति मौर्य के समय में भारत में पच्चीस से अधिक जनपद विद्यमान थे जहां निरन्तर जैन साधु-साध्वियों का विहार होता रहता था। सिन्धु-सौवीर की राजधानी वीतभयपत्तन थी जो सिन्धु नदी के तट पर स्थित महानगर थी। गांधार की राजधानी तक्षशिला (पेशावर) थी। कश्मीर उस समय गांधार का ही एक भाग था जो सब तत्कालीन सिन्धु देश में ही समाहित थे। इन सब क्षेत्रों में जैन धर्मी जनता विद्यमान थी। केकय जनपद, जेहलम, शाहपुर और गुजरात (पंजाब का एक जिला), पांचाल, श्वेतांबिका, सावत्थी (स्यालकोट), कांपिल्य आदि में जैन धर्म का व्यापक प्रसार था। यहा का राजा उदायण था और रानी प्रभावती थी, जो भगवान महावीर में मामा गणतन्त्र नायक महाराजा चेटक की सबसे बड़ी पुत्री थी। वीतमयपत्तन व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था।

भगवान महावीर 17वां चौमासा राजगृही में करके चम्पापुरी आये और यहां से विहार करते हुए इन्द्रभूति गौतम आदि साधु-समुदाय के साथ विक्रमपूर्व 496-95 में 47 वर्ष की आयु में सिन्धु-सौवीर की राजधानी वीतमयपत्तन में पधारे (बृहत्कल्पसूत्र, विभाग 2, गाथा 997-999) और राजा उदायन को दीक्षा दी।[100]

भूखनन से अनेक स्थानों से तीर्थंकर प्रतिमायें समय-समय पर प्राप्त होती हैं। ऐसी एक धातु की खड्गासन प्रतिमा अकोटा से प्राप्त हुई थी जो बडौदा म्यूजियम में सुरक्षित है।

अध्याय 50

मोहन-जोदड़ो जनपद में जैन धर्म

मोहन-जोदड़ो मे पुरातत्त्व विभाग द्वारा कराये गये उत्खनन से प्रभूत पुरातत्व सामग्री मिली है जिसने भारतीय इतिहास पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है (सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसार मैरोमल)[101]। विद्वानों का मत है कि यह स्थान प्राचीन काल का वीतभयपत्तन है। इसकी शोध-खोज ने तो भारतीय संस्कृति, विशेषतया जैन संस्कृति की प्राचीनता को पूर्णतया स्थापित कर दिया है। इसका विस्तृत विवरण इसी पुस्तक मे अन्यन्त्र भी दृष्टव्य है।

अध्याय 51

हड़प्पा परिक्षेत्र में जैन धर्म

इसके अतिरिक्त सक्करजोदड़ो, काहूजोदडो, हडप्पा, कालीबंगा आदि की खुदाइयों से भी महत्त्वपूर्ण जैन पुरातत्त्व सामग्री प्राप्त हुई है जिसमें बडी सख्या मे जैन मूर्तियां, प्राचीन सिक्के, बरतन आदि विशेष ज्ञातव्य हैं। यह सभ्यता 3000 ईसा पूर्व और उससे पहले की मानी जाती है।

अध्याय 52

कालीबंगा परिक्षेत्र में जैन धर्म

उत्खनन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि प्रागैतिहासिक युग में भी जैन धर्म का प्रचार-प्रसार उत्तर-पश्चिम भारत में रहा था। यहां से उपलब्ध जैन मूर्तियां ईसा पूर्व 3000 की है। पुरातन लिपि में वीर निर्वाण

संवत् 84 का सबसे प्राचीन शिलालेख मिला है।

आज गौड़ी जी पार्श्वनाथ[102] के नाम से जो तीर्थ प्रसिद्ध है वह मूलतः सिन्ध में ही था और पाकिस्तान बनने से पहले तक विद्यमान था। प्राचीन तीर्थमाला में भी गौड़ी जी पार्श्वनाथ का मुख्य स्थान सिन्ध ही कहा है। साप्ताहिक समाचार पत्र धर्मयुग, आदि में जनवरी-मई 1972 में इन नगरों के जैन मन्दिर के चित्र छपे थे। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का विहार सिन्धु-सौवीर के वीतमयपत्तन आदि में हुआ था।

जैन मुनियों और जैन आचार्यों के मंगल विहार निरन्तर इन क्षेत्रों में सदैव होते रहे। लगभग चार सौ विक्रम पूर्व में श्री यक्षदेव सूरि का सिन्ध में विहार और शिव नगर मे चौमासा हुआ था। उन्होंने इस जनपद में अनेक जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठाये भी कराई थीं। कक्क सूरि भी इस क्षेत्र के अतिप्रभावक आचार्य थे। श्री कालिकाचार्य ने सिंध, पंजाब, ईरान आदि में मंगल विहार किये थे। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में जैन धर्म की महती प्रभावना थी। आचार्य कक्क सूरि तृतीय ने लोहाकोट (लाहौर) में विक्रमी संवत् 157 से 174 तक चातुर्मास किया। इस युग के प्रमुख आचार्यों के मंगल विहारो, चातुर्मासो आदि से यहां जैन धर्म की महती प्रभावना होती रही।

पंजाब में लाहौर, मुल्तान, आदि मे जैन धर्म का बडा प्रचार था और स्थान-स्थान पर जैन श्रावक और व्यापारी बसे हुए थे और सर्वत्र जैन मन्दिर विद्यमान थे। जैन मत्री वस्तुपाल और तेजपाल ने विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में मूल स्थान (मुलतान) के सूर्य मन्दिर का स्वद्रव्य से जीर्णोद्धार कराया था। यहां पर अनेक जैन मन्दिर (दिगम्बर एवं श्वेताम्बर) विद्यमान थे।

पंजाब के सरहदी सूबे में बन्नू, कोहाट, लतम्बर, कालाबाग आदि में बडी सख्या में जैन परिवार आबाद थे जिनका काम व्यापार-व्यवसाय था। यहा यतियो का गमनागमन निरन्तर बना रहा। इन शहरों में जैनियों के अलग मोहल्ले रहे हैं। उन्हीं में उनके मन्दिर और उपाश्रय रहे हैं। लतम्बर, कालाबाग में जैन प्रतिष्ठाओं के उल्लेख मिलते है। कोहाट और बन्नू में और डेरा गाजी खां, डेरा इस्माइल खां, गुजरांवाला आदि में जैन श्रावक और व्यापारी विद्यमान थे। पाकिस्तान बनने से पहले गुजरांवाला में

लगभग 300 जैन परिवार आबाद थे। सरहिंद में चक्रेश्वरी देवी का जैन मन्दिर था जिसे यहां कुलदेवी माना जाता था। इस प्रकार, पाकिस्तान के पंजाब के प्राय: प्रत्येक नगर, कस्बे, गांवों आदि में जैन श्रावक और व्यापारी रहे हैं जिनके मन्दिर एवं अन्य जैन संस्थायें स्कूल, कालेज आदि रही हैं। यहां समय-समय प्रभूत जैन साहित्य की रचना भी होती रही है।

वस्तुत: पाकिस्तान बनने से पहले गुजरांवाला में दस जैन मन्दिर और उपाश्रय, अनेक जैन धर्मशालायें, पाठशालायें, गुरुकुल, आरामगाहें, समाधिस्थल, स्थानक आदि थे।

इसी प्रकार, पपनाखा में तीन जैन मन्दिर, उपाश्रय, समाधिस्थल आदि थे। किला दीदार सिंह में एक मन्दिर, राम नगर में एक मन्दिर और एक उपाश्रय, मेहरा (जिला सरगोधा) चन्द्रप्रभु जैन मन्दिर, पिंडदादनखा (जिला जेहलम) में दो मन्दिर, खानकाहडोगरां (जिला शेखपुरा) में एक मन्दिर और एक उपाश्रय थे।

स्यालकोट नगर (जिला स्यालकोट) मे शाश्वत जिन मन्दिर, स्थानकवासियों का स्थानक और अमीचंद का उपाश्रय था। स्यालकोट छावनी में एक जैन मन्दिर, किला शोभा सिंह में एक मन्दिर, नारोवाल में एक मन्दिर, एक उपाश्रय और एक जैन धर्मशाला थी। सनखतरा में एक जैन मन्दिर और एक उपाश्रय था। इसी प्रकार, रावलपिंडी में एक मन्दिर था।

जिला लाहौर में लाहौर नगर में तीन जैन मन्दिर, एक जैन उपाश्रय और एक जैन होस्टल था। इसी प्रकार, कसूर मे एक मन्दिर और दो उपाश्रय थे। मुल्तान नगर में दो जैन मन्दिर, दो उपाश्रय, एक जैन दादावाडी, एक जैन धर्मशाला और एक जैन पाठशाला थी।

सिंध प्रदेश में, ठाला मे एक मन्दिर और एक दादावाडी थे। गौडी पार्श्वनाथ गांव में दो मन्दिर थे। नगर दट्ठा में एक मन्दिर, हैदराबाद (सिंध) में एक मन्दिर, डेरागाजी खां में एक जैन मन्दिर और एक जैन उपाश्रय थे। करांची सिंध की राजधानी थी और बन्दरगाह तथा व्यापार का अच्छा केन्द्र था। सन् 1840 मं यहां मारवाड़ी, कच्छी, गुजराती, पंजाबी और काठियावाड़ी लगभग 4000 जैन आबाद थे। यहां दो जैन मन्दिर, एक उपाश्रय, एक स्थानक, एक जैन धार्मिक कन्या पाठशाला तथा एक

लड़कों की जैन पाठशाला, पुस्तकालय-वाचनालय, पिंजरापोल, व्यायामशाला आदि थे।

पश्चिमोत्तर प्रान्त (सरहदी सूबे) में, कालाबाग में, एक मन्दिर और एक उपाश्रय तथा बन्नू में एक जैन मन्दिर, एक जैन उपाश्रय, और अनेक जैन दादावाड़ियां हैं। पंजाब और सिन्ध में लौंकागच्छीय यतियों के मन्दिरों और उपाश्रयों में श्री जिनकुशल सूरि की चरणपादुकायें भी स्थापित हैं।

अध्याय 53

गांधार और पुण्ड्र जनपद में जैन धर्म

इस जनपद में जैन धर्म का व्यापक प्रचार प्रसार रहा है। जैन शास्त्रों में इस जनपद का नाम बहली भी आया है। बौद्ध ग्रंथों में गांधार देश का विशेष उल्लेख मिलता है। सिन्धु नदी से काबुल नदी तक का क्षेत्र, मुल्तान और पेशावर गांधार मण्डल में सम्मिलित थे। पश्चिमी पंजाब और पूर्वी अफगानिस्तान भी इसमें सम्मिलित थे। यह उत्तरापथ का प्रथम जनपद था। प्राचीन काल में ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबली के राज्यकाल में इस जनपद की राजधानी तक्षशिला थी, जिसके खण्डहर पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद की उत्तर दिशा में बीस मील की दूरी पर विद्यमान हैं। गांधार में ऋषभ पुत्र बाहुबली का राज्य होने से इस जनपद का नाम बहली भी था। महावीर के समय मे पुण्ड्र जनपद का जैन राजा "नग्गति" था[104] जिसकी राजधानी पुण्ड्रवर्धन थी। इसका वर्णन जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र, भगवती सूत्र और समराइच्च कहा[105] में भी आया है। शाकम्भरी तक्षशिला का ही दूसरा नाम है। इसके अन्य नाम हैं टेक्सिला, कुणालदेश, गज़नी, शाह की डेरी, धर्मचक्र भूमिका और छेदी मस्तक।

सम्राट सम्प्रति मौर्य ने अपने अन्ध-पिता कुणाल के निवास के लिए तक्षशिला में व्यवस्था की थी। वहां सम्प्रति ने कुणाल की धर्मोपासना के लिए एक जैन स्तूप का निर्माण भी कराया था। यहां कुणाल के निवास करने के कारण इसका नाम कुणाल देश पड़ा।

प्राचीन काल में ऋषभदेव के पधारने पर बाहुबली ने यहां विश्व के

सर्वप्रथम धर्मचक्र तीर्थ की स्थापना की थी। प्राचीन काल में तक्षशिला अति प्रसिद्ध और जैन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। ऋषभदेव ने अपने द्वितीय पुत्र बाहुबली को तक्षशिला का राज्य दिया था।

भारतीय इतिहास के मौर्यकाल में सम्राट सम्प्रति के समय में जैनाचार्य आर्य सुहस्ति, उनके शिष्य पट्टधर जैनाचार्य आर्य सुस्थित व आर्य सुप्रतिबद्ध और इनके शिष्य आर्य इन्द्रदिन्न विद्यमान थे। सम्राट् सम्प्रति का राज्याभिषेक ईसा पूर्व सन् 283 मे हुआ था। इसने 54 वर्ष राज्य किया।

गांधार जनपद में विहार करने वाले जैन श्रमण-श्रमणियां गांधारा गच्छ के नाम से विख्यात थे। सम्पूर्ण जनपद जैन धर्म बहुल जनपद था। तक्षशिला ध्वंस कर दिए जाने के पश्चात् इसके निकटस्थ नगर "उच्च नगर" ने इसका स्थान ले लिया गया था जो सिन्धु नदी के तट पर स्थित प्रसिद्ध नगर था।

चीनी बौद्ध यात्री फाहियान सन् 400 ईसवीं मे भारत आया था। वह तक्षशिला से 16 मील पर स्थित हीलो नगर गया था। वह उच्चक्षेत्र की राजधानी थी। उच्च नगर सिंधु नदी के तट पर स्थित था। प्राचीन काल मे तक्षशिला मे एक विश्वविद्यालय भी था, जहां अनेक संसार-प्रसिद्ध आचार्य शिक्षा देते थे और बडी दूर-दूर से तथा विदेशों से विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा प्राप्त करने में अपना गौरव समझते थे। बौद्ध जातक साहित्य मे इस विश्वविद्यालय का विस्तृत विवरण मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि देश और विदेशो के राजपुरुष और राजकुमार भी यहां शिक्षा प्राप्त करते थे। तक्षशिला पाकिस्तान में रावलपिण्डी से 20 मील की दूरी पर स्थित था, जहां से सीधे मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के लिए सडक मार्ग थे। इन्हीं से मध्य एशिया और पश्चिम एशिया और भारत के बीच प्राचीन काल में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता था। द्वितीय शताब्दी में हुए ग्रीक इतिहासकार स्पिन ने भारत और सिकन्दर के सम्बन्धों पर विस्तार से लिखा है। उसके अनुसार, सिकन्दर के समय में तक्षशिला बहुत बड़ा और ऐश्वर्यशाली नगर था तथा विशाल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र था। सातवीं शताब्दी मे आये चीनी बौद्ध यात्री हुएनसांग ने भी तक्षशिला की समृद्धि पर विस्तार से लिखा है। तक्षशिला मौर्य काल से पूर्व बसा हुआ था जो द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में उजड़ गया और बाद में ग्रीक लोगों ने उसे सिरकप

के नाम से वहीं पर बसाया जिसे हूणों ने पाचवीं शताब्दी ईसवीं में ध्वस्त कर दिया। अन्त मे महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद उसे सदा के लिए समाप्त कर दिया गया।

सन् 323 ईसा पूर्व मे, सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने ग्रीको को पंजाब से बाहर निकाल दिया और तक्षशिला तथा पंजाब के अन्य राज्यों के साथ उसको अपने राज्य मे मिला लिया। बाद में तक्षशिला गाधार के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

अध्याय 54

हिमाद्रि कुक्षी जनपद (कश्मीर) में जैन धर्म

अति प्राचीन काल से हिमाद्रिकुक्षी, सतिसर (कश्मीर) जनपद में जैन धर्म की विद्यमानता के प्रमाण उपलब्ध है। यहां शत्रुजयावतार जैन तीर्थ, विमलार्दि जैन महा तीर्थ, विमलाचल तीर्थ आदि विश्व प्रसिद्ध जैन महातीर्थ विद्यमान रहे है।

कवि कल्हण ने अपने कश्मीर इतिहास ग्रंथ राजतरगिणी में लिखा है कि राजा शकुनि का प्रपौत्र सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान सन् 1445 ईसा पूर्व मे कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा और उसने जैन धर्म (जिनशासन) को स्वीकार किया। कवि कल्हण के अनुसार, कश्मीर के जैन सम्राट सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान का समय बाइसवें जैन तीर्थकर अरिष्टनेमि और 23वें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के मध्य का है।[106] कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर के जैन सम्राट सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान ने शुष्कनेत्र तथा वितस्तात्रपुर नामक जैन तीर्थ नगरों को जैन स्तूप मण्डलों (स्तूप समूहों) से आच्छादित कर दिया था। उसने अनेक जैन मन्दिरों तथा नगरों का भी निर्माण किया था। उसने वितस्तात्रपुर के धर्मारण्य विहार में इतना ऊंचा जैन मन्दिर बनवाया था जिसकी ऊंचाई देखने में आंखें असमर्थ हो जाती थीं[107]। कश्मीर सम्राट सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान ने कश्मीर में "अशोकेश्वर" नामक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण भी कराया था जिसमें जैन तीर्थंकरों की स्वर्णमयी प्रतिमायें बड़ी संख्या में विद्यमान थीं।[108]

इतिहासकार मुसलमान हसन ने लिखा है कि अशोक ईसा पूर्व 1445 में कश्मीर के राजसिंहासन पर आरुढ हुआ। उसने जैन धर्म अंगीकार किया। उस धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए उसने प्राणपण से प्रयास किया। कसबा बिजबारह मे कश्मीर सम्राट सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान ने जैन धर्म के बहुत ही आलीशान और मजबूत मन्दिर बनवाये। बाबू हरिश्चन्द्र ने अपनी इतिहास पुस्तक *"इतिहास समुच्चय"* में लिखा है कि कश्मीर के राजवंश मे 47वां राज्य अशोक का हुआ। उसने 62 वर्ष राज किया। श्रीनगर इसी ने बसाया और जैनमत का प्रचार किया। इसके समय मे श्रीनगर की आबादी छह लाख थी। इसका सत्ताकाल 1384 ईसा पूर्व है जो इसकी मृत्यु का समय प्रतीत होता है।[109]

राजा जलौक-कश्मीर सम्राट सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र (48वा शासक) जलौक हिमाद्रि कुक्षी (कश्मीर) की राजगद्दी पर बैठा। वह भी अपने पिता के समान दृढ जैनधर्मी था। इसने अपने राज्य में जैन धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए बहुत कार्य किया। उसने जैन धर्म के प्रसार के लिए राज्य भर मे अनेक जैन मन्दिरो का निर्माण किया और जैन धर्म का व्यापक प्रचार किया।

इसके बाद के इस वंश मे राजा जैनेह और ललितादित्य भी दृढ़ जैन धर्मी थे और उन्होंने जैन धर्म को पुष्ट किया। ललितादित्य का काल वही है जो महावीर और बुद्ध का था तथा उसने विशाल चैत्यों (जैन मन्दिरों) एव विशाल जिन मूर्तियो से युक्त राज विहार का निर्माण कराया जिस कार्य मे चौरासी हजार तोले सोने का उपयोग किया गया था[110] साथ ही, उसने [illegible] ऊचे जैन स्तूप का निर्माण करवा कर उस पर गरुड की स्थापना की। [illegible] प्रथम जैन तीर्थकर ऋषभदेव की शासन देवी चक्रेश्वरी की सवारी[111]

राजा ललितादित्य के आदेश से उसके तुखार निवासी चङ्कुण नामक [illegible]नुयायी मत्री [illegible] [illegible]ार (हिमाद्रि कुक्षी-कश्मीर) मे जैन मन्दिर [illegible] था जिसे [illegible] विहार कहा जाता है। उसने चङ्कुण में अपने [illegible] [illegible]मीर नरेश [illegible]ादित्य के लिए, उनकी इच्छानुकूल एक उन्नत [illegible] का निर्मा[illegible] [illegible]या था। [illegible] उसने जिनेन्द्र की स्वर्णमयी [illegible] की स्थाप[illegible] [illegible]ी[112]।

[illegible] [illegible]नुयायी था।

वह लाड्देश का माण्डलिक राजा भी था। उसने कय्य स्वामी का एक उद्भुत जैन मन्दिर बनवाया था[113]।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ का विहार भी हिमाद्रि कुक्षी (कश्मीर) तक हुआ था[114]।

महावीर का विहार भी हिमाद्रि कुक्षी (कश्मीर) में हुआ था[115]। श्री माल पुराण (अध्याय 73; श्लोक 27.30) में लिखा है कि महावीर दीक्षा लेकर बहुत काल तक निराहार रहकर तप करते रहे जिस महाउग्रतप से सर्वत्र जैन धर्म की प्रभावना बढी। जब महावीर का कश्मीर में विहार हुआ तब वहां भी जैन धर्म का विशेष प्रसार हुआ।

कश्मीर नरेश सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान् का समय तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पूर्व का अर्थात् सन् 1445 ईसा पूर्व का है तथा सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र सम्राट अशोक मौर्य के राज्यारुढ होने का समय ईसा पूर्व 274 का है। इस अशोक मौर्य की मृत्यु ईसा पूर्व 232 में हुई। इन दोनों अशोकों के राज्यारोहण के समय में 1171 वर्षों का अन्तर है अर्थात् 12 शताब्दियों का अन्तर है। कुछ इतिहासकारों ने भ्रमवश दोनों अशोकों को एक मानने की भी गलती की है।

अध्याय 55

बंगलाद्रेश एवं परिवर्ती क्षेत्रों में जैन धर्म

प्राग्वैदिक और प्रागार्यकाल से ही शेष भारत की ही भांति बंगलादेश और उसके परिवर्ती सम्पूर्ण पूर्वी क्षेत्र और कामरूप जनपद में जैन संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार रहा है जिसके प्रचुर संकेत सम्पूर्ण वैदिक और परवर्ती साहित्य मे उपलब्ध है। आर्यों से परास्त होने के पश्चात् जैनधर्मी श्रमण, वर्तमान मगधों के पूर्वज और द्रविड़ वर्ग पूर्वी क्षेत्रों की ओर सिमट गए जहां सम्पूर्ण क्षेत्र में उनके अनेकानेक जनपद आगामी हजारों वर्षों तक फलते-फूलते रहे। पार्श्वनाथ-महावीर युग (800-600 ईसा पूर्व) में भारत में 16 महाजनपद विद्यमान थे जिनमें से अनेक महाजनपदों का विस्तार पूर्वी क्षेत्रों, प्रदेशों एव वर्तमान बंगलादेश तक था। ये सभी महाजनपद जैन संस्कृति के केन्द्र

थे तथा इनका उल्लेख इसी पुस्तक में अन्यत्र पहले किया जा चुका है। इस सम्पूर्ण परिक्षेत्र में श्रमण संस्कृति की व्यापक प्रभावना रही। पार्श्वनाथ, महावीर, बुद्ध आदि की विहारभूमि होने तथा सैकडों विहारों के यहां पर विद्यमान होने के कारण इसके एक प्रदेश का नाम "विहार" ही पड़ गया। महावीर की व्यापक और अपूर्व प्रभावना स्वरूप उनके नाम पर अनेक प्रक्षेत्रो के नाम भी वर्धमान, मानभूम, वीरभूम, सिंहभूम आदि पड़ गये।

पार्श्व-महावीर युग में सम्पूर्ण कामरूप प्रदेश (बंगलादेश), पूर्वी क्षेत्र, बगाल आदि में जैन संस्कृति की व्यापक प्रभावना विद्यमान रही। उस युग में इस सम्पूर्ण क्षेत्र में निवसित जैन धर्मानुयायी "श्रावक" कहलाते थे जो आज भी इस क्षेत्र मे "सराक" के नाम से जाने जाते हैं,[43] और आज उनकी जनसख्या लगभग 15 लाख है जो बगलाभाषी क्षेत्र, बिहार, छोटा नागपुर, सथाल क्षेत्र और उड़ीसा में फैली हुई है। उन्होंने इस क्षेत्र मे हजारो जैन मन्दिर बनवाये और जैन तीर्थंकरो, गणधरों, निर्ग्रन्थों आदि की हजारो मूर्तिया स्थापित कराई जो आज भी इस क्षेत्र में व्यापकता से उपलब्ध होती है। आज भी सम्पूर्ण सराक जाति पूर्णतया अहिंसावादी एवं शाकाहरी है।[44] वे दिन में भोजन करते हैं। ऋषभदेव, आदिदेव, पार्श्वनाथ आदि उनके कुल देवता हैं। 1023 ईस्वीं में जब चोलनरेश राजेन्द्र देव ने बगाल नरेश महीपाल पर आक्रमण किया तब चोल सेना ने आते-जाते समय धार्मिक द्वेषवश सराक जैन मन्दिरो को ध्वस कर दिया। इसके बाद पाण्ड्य नरेश ने लिंगायत शैव सम्प्रदाय के उन्माद मे सराको के जैन धर्मायतनो का विनाश किया और सराकों को धर्मपरिवर्तन करने पर बाध्य किया। सराको के व्यापार-धन्धे नष्ट कर दिये गए और समय-समय पर हज़ारों निरीह सराको का वध कर दिया गया। आज भी इस क्षेत्र में सर्वत्र सराकों के बहुमूल्य जैन मन्दिर, कलापूर्ण मूर्तियां और अन्य विपुल जैन कला कृतियां विद्यमान है। इन मन्दिरो मे ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर एवं अन्य सभी तीर्थंकरों, धरणेन्द्र, पद्मावती आदि की मनोज्ञ मूर्तिया विराजमान है। वस्तुतः सम्पूर्ण बंगलाभूमि पार्श्वनाथ, महावीर एवं अन्य अनेक तीर्थंकरों की विहार भूमि रही है।

बंगलादेश और परिवर्ती क्षेत्र में जैन धर्म की महती प्रभावना महावीर पूर्व काल से ही रही है। सर्वत्र अनेक जैन बस्तियां और तीर्थ क्षेत्र विद्यमान

थे। गुप्तकाल में यहां अनेक विशाल जैन विहार होने के प्रमाण मिलते हैं। चीनी यात्री हुऐनसांग ने जब छठी शती में इस परिक्षेत्र में भ्रमण किया था तो उसने यहां अनेकानेक जैन मन्दिर, जैन बस्तियां एवं निर्ग्रंथ जैन मुनियों को यहां मंगल विहार करते देखा था। वीरभूम, वर्धमान, सिंहभूम, मानभूम आदि जो परिक्षेत्रीय नाम यहां मिलते हैं वे महावीर के अनुकरणमूलक नाम हैं जो जैन धर्म का व्यापक प्रभाव होना दर्शित करते हैं। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में सर्वत्र हजारों प्राचीन जैन प्रतिमायें, जैन तीर्थों के खण्डहर और उजड़ी हुई जैन बस्तियां इस बात के प्रमाण हैं कि यहां कितना विपुल जैन पुरातात्त्विक वैभव रहा है। यहां आज भी जैन सराकों (श्रावकों) की लाखों जनसंख्या विद्यमान है और सर्वत्र उनके जैन देवालय मौजूद हैं। जैन तीर्थंकरों ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर आदि की हजारों प्रतिमायें तो इतर धर्मियों द्वारा भैरव आदि देवताओं के नाम से पूजी जा रही है।[90]

आज इस कामरूप प्रदेश में जिसमें बिहार, उडीसा और बंगाल भी आते थे, सर्वत्र गांव-गांव, जिलो-जिलो में प्राचीन सराक जैन संस्कृति की व्यापक शोध-खोज हो रही है और नए-नए तथ्य उद्घाटित हो रहे हैं। बिहार में झारखण्ड की स्थापना के बाद, यहा का और मिथिला आदि का सराक शोध कार्य व्यवस्थित हो जाने की आशा है।

पहाडपुर (जिला राजशाही) (बंगलादेश) में उपलब्ध 478 ईस्वी के ताम्रपत्र के अनुसार, पहाडपुर में एक जैन विहार (मन्दिर) था, जिसमें 5000 जैन मुनि ध्यान अध्ययन करते थे और जिसके ध्वंसावशेष चारों ओर बिखरे पडे हैं। प्राचीन काल में वह वटगोहाली ग्राम में स्थित पंचस्तूपान्वय के निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनन्दि का जैन विहार कहलाता था। एक हजार वर्ग गज के परकाटे मे चारों और 175 से भी अधिक गुहाकार प्रकोष्ठ थे तथा उनके मध्य स्वस्तिक के आकार का तीन मंजिला सर्वतोभद्र जैन मन्दिर था। इस पंचस्तूपान्वय की स्थापना पौण्ड्रवर्धन निवासी आचार्य अर्हद्बली ने की थी। "पौण्ड्रवर्धन" और उसके समीपस्थ "कोटिवर्ष" दोनों ही प्राचीनकाल में जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र थे। पौण्ड्रवधन राजनैतिक दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण था, जहां मौर्य और गुप्तकाल में उपरिक (गवर्नर) रहता था। श्रुतकेवली भद्रवाहु और आचार्य अर्हद्बली दोनों ही आचार्य इसी नगर के निवासी थे।

वटगोहाली विहार की ख्याति जैन विद्या केन्द्र के रूप में भी थी जहां अनेक दिगम्बर मुनि रहकर ध्यान-अध्ययन किया करते थे तथा हजारों यात्री उनके दर्शनों और उनका उपदेश सुनने के लिए आया करते थे, तथा हजारों छात्र विद्याध्ययन के लिए आते थे।

इस विहार की ख्याति जैन विश्व विद्याकेन्द्र के रूप में गुप्तकाल तक रही। बाद में बंगाल के धर्मान्ध हिन्दू राजा शंशाक ने वटगोहाली जैन विहार को बुरी तरह क्षति पहुंचाई और इस पर ब्राह्मणों का अधिकार हो गया। बाद में कट्टर बौद्ध पालवंशी नरेश धर्मपाल ने 770 ईसवीं में वटगोहाली जैन विहार पर अधिकार करके उसे समीपस्थ सोमपुर स्थित विशाल बौद्ध विहार मे सम्मिलित कर लिया। तदनन्तर मुस्लिम शासकों ने उसे नष्टभ्रष्ट कर दिया। वटगोहाली (आधुनिक पहाडपुर) से प्राप्त यह उपर्युक्त ताम्रपत्र ऐतिहासिक दृडिट से अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा उससे लगभग सात सौ वर्षो तक विभिन्न रूपों मे विश्वभर मे प्रसिद्ध वटगोहाली जैन विहार के सम्बन्ध मे प्रकाश पडता है। बगलादेश के पहाडपुर से गुप्त सवत् 159 (478-79 ई) का जहा जैन अभिलेख प्राप्त हुआ है, वह स्थान बंगलादेश के राजशाही जिले में स्थित है। इस अभिलेख से इस स्थान पर तीर्थकरों की सैकडो प्रतिमाओ की प्रतिष्ठापना की बात सिद्ध होती है। विश्वयात्री युवान च्वाग जब बगलादेश से होकर भ्रमण कर रहा था उस समय बगाल के विभिन्न भागो मे निर्ग्रन्थ जैन सम्प्रदाय के साधुओं का सर्वत्र विहार होता था और सभी स्थानों पर जैन श्रावको का निवास था[46]। बगाल क्षेत्र में जैन धर्म के प्रचार के सकेत आगे चलकर 9वीं शताब्दी मे लिखे गये जैन ग्रन्थ कथाकोष से प्राप्त होते हैं। इसमें उल्लेख हैं कि जैन आचार्य भद्रबाहु उत्तरी बंगाल के देवकोट (कोटिवर्ष) मे पैदा हुए थे[47]। इसी प्रकार, बगाल के विभिन्न भागो की खुदाई से भी 9वी-10वी शताब्दी के बहुत से जैन अभिलेख एवं मूर्त्तियां आदि प्राप्त हुए हैं। इससे पता चलता है कि भारत के अन्य भागों की ही भाति बंगाल एवं बंगलादेश क्षेत्र में भी जैनधर्म की विभिन्न शाखाये अपने धर्म एवं संघ का प्रचार-प्रसार कर रही थीं।

बंगलादेश में राजशाही के पास सुरोहर नामक स्थान से जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की एक सबसे प्राचीन प्रतिमा प्राप्त हुई है जो

राजशाही के संग्रहालय में सुरक्षित है। ऋषभनाथ की दूसरी प्रतिमा राजशाही के मंदोइल नाम स्थान से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में अत्यन्त सुन्दर ढंग से निर्मित की गई है। इसी प्रकार, बंगला क्षेत्र के पुरुलिया, बांकुरा एवं मिदनापुर जिलो के विभिन्न स्थानों से जैन तीर्थंकरों की प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जिनके पार्श्व में अनेक देवी-देवताओं की मूर्तिया भी बनी हैं[48]। ये सभी साक्ष्य बागला देश एवं पश्चिमी बंगाल में जैन धर्म के व्यापक प्रचार के प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. भण्डारकर का विचार है कि जब बिहार एवं कोशल क्षेत्रों में गौतम बुद्ध ने अपने प्रचार के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रमुख क्षेत्र बना लिया तो महावीर स्वामी ने बंगाल को ही सर्वप्रथम अपना प्रचार केन्द्र चुना था। परिणामतः जैन धर्म बगाल एवं उसके आसपास के क्षेत्रो मे अत्यधिक लोकप्रिय हो गया। सम्भवतः प्रारम्भिक काल मे बगाल मे लोकप्रिय बन जाने के कारण ही जैनधर्म इस प्रदेश के समुद्री तटवर्ती भूभागों से होता हुआ उत्कल प्रदेश के विभिन्न भूभागो मे भी अत्यन्त शीघ्र गति से फैल गया।[49]

अध्याय 56

विदेशों में जैन साहित्य और कला सामग्री

लंदन स्थित अनेक पुस्तकालयों मे भारतीय ग्रन्थ विद्यमान है जिनमें से एक पुस्तकालय में तो लगभग 1500 हस्तलिखित भारतीय ग्रन्थ है और अधिकतर ग्रन्थ प्राकृत-संस्कृत भाशाओ मे है और जैन धर्म से सम्बन्धित है।

जर्मनी में लगभग 5000 पुस्तकालय है। इनमें से बर्लिन स्थित एक पुस्तकालय में 12,000 (बारह हजार) भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थ हैं जिनमें बडी संख्या जैन ग्रंथों की भी है।

अमेरिका के वाशिंगटन और बौस्टन नगर मे पांच सौ से अधिक पुस्तकालय हैं। इनमे से एक पुस्तकालय मे चालीस लाख हस्तलिखित पुस्तकें हैं जिनमे भी 20,000 पुस्तकें प्राकृत-सस्कृत भाषाओं में हैं जो

भारत से गई हुई हैं।

फ्रांस में 1100 से अधिक बडे पुस्तकालय है जिनमें पेरिस स्थित बिब्लियोथिक नामक पुस्तकालय में 40,00,000 (चालीस लाख) पुस्तके है। उनमें बारह हजार पुस्तकें प्राकृत-सस्कृत भाषा की है और भारत से गई हुई हैं जिनमे जैन ग्रन्थों की अच्छी संख्या है।

रूस में 1,500 बडे पुस्तकालय हैं। उनमे एक राष्ट्रीय पुस्तकालय भी है जिसमे 50,00,000 (पांच लाख) पुस्तकें है। उनमें 22,000 पुस्तके प्राकृत-सस्कृत की हैं और भारत से गई हुई हैं। इसमे जैन ग्रन्थों की भी बडी संख्या है।

इटली मे लगभग 4,500 पुस्तकालय हैं। उनमें से प्रत्येक में लाखों पुस्तकों का संग्रह है। कोई 60,000 (साठ हजार) पुस्तकें प्राकृत-संस्कृत की है जो प्राय भारत से गई हुई हैं। इनमे जैन पुस्तके भी बडी संख्या मे है।

नेपाल के काठमाडू स्थित पुस्तकालयो मे एव अन्यत्र हजारो की सख्या मे जैन प्राकृत और सस्कृत ग्रथ विद्यमान है तथा शोध-खोज की अपेक्षा रखते है।

इसी प्रकार, चीन, तिब्बत, ब्रह्मा, इण्डोनेशिया, जापान, मगोलिया, कोरिया, तुर्की, ईरान, असीरिया, काबुल आदि के पुस्तकालयो में भी भारतीय ग्रन्थ बडी सख्या मे मौजूद है।

भारत से विदेशो मे ग्रथ ले जाने की प्रवृत्ति केवल अग्रेजों के काल से ही प्रारम्भ नहीं हुई, अपितु इससे हजारो वर्ष पूर्व भी भारत की इस अमूल्य निधि को विदेशी लोग अपने-अपने देशो मे ले जाते रहे है। उदाहरण के लिए, विक्रम की पाचवी शताब्दी मे चीनी यात्री फाह्यान भारत में आया था और यहा से ताडपत्रो पर लिखी हुई 1520 पुस्तके चीन ले गया था।

विक्रम की सातवी शताब्दी मे चीनी यात्री हुएनसाग भारत में आया था और वह भी अपने साथ पहली बार 1550 पुस्तके, दूसरी बार 2175 पुस्तकें और तदुपरान्त सन् 464 ईसवी के आसपास 2550 ताडपत्रो पर लिखे हुए ग्रन्थ अपने साथ चीन ले गया। इस प्रकार, समय-समय पर विश्व के विभिन्न देशो से सैकडो यात्री आते रहे और वे अपने साथ महत्त्वपूर्ण भारतीय साहित्य ले जाते रहे। वे लोग भारत से कितने ग्रंथ ले

गए उनकी संख्या का सही अनुमान लगाना कठिन है। इसके अतिरिक्त, म्लेच्छों, आततायियों, धर्म-द्वेषियों ने हजारों-लाखों की संख्या मे हमारे साहित्य के रत्नों को जला दिया।

जैन मुनियों और मनीषियो ने कोई भी विषय अछूता नहीं रहने दिया जिस पर कलम न चलाई हो। उन्होने आत्मवाद, अध्यात्मवाद, कर्मवाद, परमाणुवाद, नीति, काव्य, कथा, अलंकार-छन्दशास्त्र, व्याकरण निमित्त-शास्त्र, कला, सगीत, जीव-विज्ञान, राजनीति, लोकाचार, ज्योतिष, आयुर्वेद, खगोल, भूगोल, गणित, फलित दर्शन, धर्मशास्त्र आदि समस्त विषयों पर निरन्तर साहित्य सृजन किया। इसके अतिरिक्त, उन्होने भाषा विज्ञान, मानस विज्ञान, शिल्पशास्त्र, पशु-पक्षी विज्ञान को भी अछूता नही छोडा। हंसदेव नाम्क जैन मुनि ने मृग-पक्षी-शास्त्र नामक ग्रन्थ लिखा था जिसमें 36 सर्ग और 1900 श्लोक है। इसमें 225 पशु पक्षियो की भाषा का प्रतिपादन किया गया है।[92]

वस्तुतः विधर्मी आततायियो ने हमारा विपुल साहित्य नष्ट किया तथा विदेशी पर्यटक आदि जैन साहित्य प्रचुर मात्रा मे ले गए।

जैन इतिहास के साधना मे जैन मूर्तियों, जैन स्तूपो, जैन स्मारकों आदि का विशेष महत्त्व है। विद्वानो ने मूर्ति मान्यता का प्रचलन सर्वप्रथम जैनो का ही माना है। जैन शास्त्रो के आधार से जैन मूर्तियो की मान्यता अनादि काल से चली आ रही है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय ता पाकिस्तान स्थित मोहन-जोदडो, हडप्पा आदि सिन्धु-घाटी-सभ्यता के केन्द्रो की खुदाई से प्राप्त सामग्री से भी, जो ईसा पूर्व 3000 वर्ष पुरानी पुरातत्त्वेत्ताओं ने मानी है, ऋषभदेव, सुपार्श्वनाथ, आदि जैन तीर्थंकरो से सम्बन्धित प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।

जैसे जैन साहित्य पर रोमाचकारी अत्यधिक अत्याचार हुए है, वैसे ही जैन मन्दिरो, मूर्तियों, स्मारको, स्तूपों, आदि पर भी खूब जुल्म ढाये गए। बडे-बडे जैन तीर्थ, मन्दिर, स्मारक, स्तूप आदि मूर्तिभंजकों ने धराशायी किए। जैन मूर्तियो को नष्ट कर उन पर अकित मूर्ति-लेखो का सफाया किया गया। अफगानिस्तान, कश्यपमेस (कश्मीर), सिन्धुसौवीर, ब्लूचिस्तान, बेबीलन, सुमेरिया, पजाब, तक्षशिला तथा कामरूप प्रदेश, बंगलादेश आदि प्राचीन जैन संस्कृति बहुल क्षेत्रों में यह विनाशलीला चलती रही। जैन

स्तूपों और स्मारकों को नष्ट-भ्रष्ट किया गया। अनेक जैन मन्दिरों को हिन्दू और बौद्ध मन्दिरों में परिवर्तित कर लिया गया तथा उनमें मस्जिदे बना ली गई। दिल्ली की कुतबमीनार, अजमेर का ढाई दिल का झोपड़ा, काबुल, कन्धार, तक्षशिला आदि के जैन मन्दिरों का परिवर्तन आदि इसी प्रकार के उदाहरण हैं और वे जैन मन्दिरों के अवशेष है।

अनेक जैन मूर्तियों, मन्दिरों, गुफाओ, स्मारकों, शिलालेखों आदि को बौद्धो का बना लिया गया। जो कुछ बच पाये उनका जीर्णोद्धार करते समय असावधानी, अविवेक और अज्ञानता के कारण, उनके शिलालेखो, मूर्ति लेखों आदि को मिटा दिया गया या नष्ट को जाने दिया गया। अनेक खंडित-अखडित जैन मूर्तियों को नदियो, कुओं, समुद्रों मे डाल देने से हमारी ही नासमझी से प्राचीन जैन सामग्री को नष्ट हो जाने दिया गया। प्रतिमाओ का प्रक्षाल आदि करते समय बालाकूची से मूर्ति-लेख घिस जाने दिए गए। अनेक जैन मन्दिर, मूर्तिया आदि अन्य-धर्मियो के हाथो मे चले जाने से अथवा अन्य देवी-देवताओ के रूप मे पूजे जाने से जैन इतिहास और पुरातत्त्व एवं कला-सामग्री को भारी क्षति पहुची है। जैन समाज मे ही मूर्तिपूजा विरोधी सम्प्रदायों द्वारा जैन तीर्थो, मन्दिरो, मूर्तियो आदि को हानि पहुंचाई जाने से जैन इतिहास और पुरा-सामग्री को कोई कम क्षति नही उठानी पडी। मात्र इतना ही नही, दिगम्बर-श्वेताम्बर मान्यता के भेद ने भी जैन इतिहास को धुंधला बनाया है।

पुरातत्त्वेत्ताओं की अल्पज्ञता, पक्षपात तथा उपेक्षा के कारण भी जैन पुरातत्त्व-सामग्री को अन्य मतानुयायियो की मानकर जैन इतिहास के साथ खिलवाड किया गया। प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ का कहना है कि फिर भी इतिहास की निरन्तर शोध-खोज से आज भूगर्भ से तथा इधर-उधर बिखरे-पडे बहुत से प्रमाणो से गत 150 वर्षों मे जैन इतिहास के ज्ञान मे जितनी वृद्धि हुई है उससे जैन धर्म के इतिवृत्त पर काफी प्रकाश पडा है।[93]

सन्दर्भ सूची

1 श्रीमद्भागवत-11/2, मनुस्मृति आदि।

2 Major General J.G.R. Furloug: Science of Comparative Religions, Pages 14-16.

3 ऋग्वेद – 10/102/6, 1/16/91, 2/4/1/9, 2/4/1/9, 2/4/1/10, 1/16/9/0. आदि।

4 ऋग्वेद – 1/16/9/1, 2/4/1/9.

5 The Secret of Sarazm-SPUTNIK, Digest of Soveit Sciences (May 1988).

6 ऋग्वेद – 2/4/1/10, 2/4/1/3, 1/16/9/10.

7 Epic of GILGAMESH-Published from Great Britain.

8 Pan Nath Vidyalankar-The Times of India—19-3-1935.

9 जैन विद्या का सास्कृतिक अवदान – डॉ रामचन्द्र, पृष्ठ 162।

10 तीर्थमाला – श्री दिगम्बर जैन पुस्तकालय, कापडिया भवन, सूरत (गुजरात)।

11 अरब और भारत के सम्बन्ध – मौलाना सुलेमान नदवी, पृष्ठ 176.

12 ट्रैवल्स ऑफ हुऐनसाग – सेमुअल बील, खड 2ए पृष्ठ 205.

13 Science of Comparative Religions — Major General J-C.R., Furloug, Page 28.

14 Indian Express, New Delhi — 21-6-1987.

15 "The Description of Character, Manners and Customs of the People of India and of their Institutions, Religions and Civil" — East INdia Company, 1817.

16. Short Studies in The Science of Comparative Religions, 1887, Intoduction.

17 जैन परम्परा का इतिहास-युवाचार्य महाप्रज्ञ – जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), पृष्ठ 112, 113.

18 Coloniel Todd — Annals and Antiquities of Rajasthan.

19. जैन परम्परा का इतिहास – युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनू, पृष्ठ 113.

20 जैन परम्परा का इतिहास – युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनू, पृष्ठ 114.

21. जैन परम्परा का इतिहास – युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनू, पृष्ठ 114.

22 Science of Comparative Religions — Major General J.G.R. Furloug] Page 28.
23. Science of Comparative Religions — Major General J.G.R. Furloug, Page 46.
24 हिमालय में भारतीय सस्कृति – विऽवंभर सहाय प्रेमी, मेरठ, पृष्ठ 44।
25 विविध तीर्थकल्प (वि 14 शतक), पृष्ठ 69.
26 परिशिष्ठ पर्व – आचार्य हेमचन्द्र (9/54).
27 जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति – 1/11.
28 जम्बूद्वीप, प्रज्ञप्ति – 1/11.
29 वसुदेवहिण्डी – पृष्ठ 148, 149.
30 वसुदेवहिण्डी – पृष्ठ 148, 149.
31 उडीसा मे जैन धर्म – डॉ0 लक्ष्मीनारायण साहू।
32 The Confluence Opposite — C.R. Jain, Addenda, Page 3.
33 Lord Mahavir and Teachings of His Times.
(a) Historical Gleanings.
(b) Proceedings of the Royal Geographical Society, September, 1885.
— Sir Henry Rollinson.
"Central Asia" Page 246.
— Sir Henry Rollinson,
Jain Gazette, Vol. III, No. 5, Page 13.
34 Indian Express, New Delhi-21-6-1967.
35. हिन्दी विश्वकोष (तऽतीय भाग), पृष्ठ 128 (लेखक – श्री नगेन्द्रनाथ वसु)
36 आर्कियेलोजीकल सर्वे ऑफ इडिया, एनुअल रिपोर्ट, 1915 15 ई, पृ 2.
37 आवश्यक निर्युक्ति, पंक्ति 322.
38 आवऽयक चूर्णी, भाग 1, पृष्ठ 180.
39 विविध तीर्थकल्प, पृष्ठ 27.
40 वाटर्स आन युवानच्वाग्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, भाग 1, पृष्ठ 248.
41 एके चटर्जी – ए कौम्प्रीहैंसिव हिस्ट्री ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ 97ए
42 एके चटर्जी – ए कौम्प्रीहैंसिव हिस्ट्री ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ 98ए
43 ए. एस बी – 1868
44 मि एवकूपलैड तथा मि. गेट सैन्सर्स रिपोर्ट।
45 इपिग्राफिया इण्डिका, भाग 20, पृष्ठ 61ए सरकार – सेलेक्ट इंस्क्रिप्सन्स, पृष्ठ 352
46 जैन जर्नल, भाग 3ए अप्रैल, 1969ए पृष्ठ 161
47 जैन जर्नल, भाग 3ए अप्रैल, 1969ए पृष्ठ 160
48 जैन जर्नल, भाग 3ए अप्रैल, 1969ए पृष्ठ 16162

49. जैन जर्नल, भाग 3ए अप्रैल, 1969ए पृष्ठ 160.
50 धर्मानन्द कोसाम्बी – भारत की सस्कृति और अहिसा।
51. संस्कृति के चार अध्याय – डॉ0 रामधारी सिह दिनकर।
52. अनेकान्त (मासिक) – वीर सेवा मन्दिर, दरियागज, नई दिल्ली- वर्ष 11, किरण 1 – मोहनजोदडो कालीन और आधुनिक जैन संस्कऽति (पृष्ठ 48)।
53 **Hindustan Times, New Delhi — 20.7.1975.**
54 विशाल भारत, भाग 18, पृष्ठ 626.632 पर प्रो हेवीन्ट की शोध पर लिखा हुआ लेख जिस में प्रागैतिहासिक राजवशो का उल्लेख है।
55 "जैन" (गुजराती साप्ताहिक, भाव नगर, गुजरात) 2 जनवरी, 1937 (पृष्ठ 2)।
56 **Short Studies in the Science of Comparative Religion, Page 243 and 244. (J.G.R. Furloug).**
57 प्रोफेसर ए चक्रवर्ती के ईरान मे जैन धर्म विषयक उल्लेख।
58 विविध तीर्थ कल्प – जिनप्रभसूरि मे इसका उल्लेख हुआ है।
59 मौर्य साम्राज्य के इतिहास की भूमिका के पी जायसवाल।
60 भारतवर्ष का इतिहास – मिश्रबंधु हिमवत खण्ड 2, पृष्ठ 121.
61 अशोक के धर्मलेख – जनार्दन भट्ट, पृष्ठ 14 आदि।
62 जैन सत्य प्रकाश (गुजराती मासिक पत्रिका) – क्रमांक 32, पृष्ठ 136 मे जैन राजाओ शीर्षक लेख।
63 **V.A. Smith — Early History of India, Page 154.**
64 तिलोय पण्णत्ति – पृष्ठ 338.
65 हरिषेण कृत कथा कोष।
66 जैन शिलालेख संग्रह – डॉ. हीरालाल जैन, पृष्ठ 68.
67 आराधना कथा कोश।
68 पुण्याश्रव कथाकोश – श्री नाथूराम।
69 आचार्य हेमचन्द्रकृत परिशिष्ट पर्व – 8/415-435.
70 **Mysore and Coorg Inscriptions — Lewis Rice.**
71 **Mysore and Coorg Inscriptions — Lewis Rice.**
72 डॉ फ्लीट का भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त पर लेख – **Indian Antiquary — Volume 21.**
73. निशीथ चूर्णी।
74. भारत का इतिहास – विन्सेन्ट स्मिथ।
75 आचार्य हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व प्रभृति जैन ग्रन्थों के आधार पर श्री विद्यालंकार ने यह निष्कर्ष निकाला।
76 प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार – बृहत्कल्प सूत्र – 301 निर्युक्तिगाथा 3275. 89 के आधार पर।

77 पार्जीटर — The Puram Text of the Dynasties of the Kali Age, Page 28.

78 श्री ओझा।

79 89.

A. Confuence of Opposites — C.R. Jain.

B. Asiatic Research, Volume III, Page 6.

C. Historical Gleemings (Page 42).

D. सम्राट प्रियदर्शी (गुजराती) — त्रिभुवनदास लहेरचन्द्र शाह।

E. On the Indian Sect of the Jains.

F. मध्य एशिया और पजाब मे जैनधर्म — हीरालाल दूगड।

G. जैन ज्ञान महोदकीय (गुजराती)।

H. प्राचीन भारत वर्ष (गुजराती) — शशिकान्त एण्ड कम्पनी, रावपुरा, बडोदरा (गुजरात)।

I. प्राचीन भारत वर्ष (गुजराती) — शशिकान्त एण्ड कम्पनी, रावपुरा, बड़ोदरा (गुजरात)। (Five Volumes).

J. भगवान महावीर स्वामी (गुजराती) — शशिकान्त एण्ड कम्पनी, रावपुरा, बडोदरा (गुजरात)।

K. Ancient India (Four Volumes) शशिकान्त एण्ड कम्पनी, रावपुरा, बडोदरा (गुजरात।

90 डॉ दयाचन्द जैन कृत जैन पूजा काव्य नामक पीएच.डी थीसीस (1990) जो सागर विश्व विद्यालय, सागर में प्रस्तुत की गई।

91 जैन शास्त्र भडार, तिजारा (राजस्थान)।

92 सरस्वती मासिक पत्रिका — अक्तूबर, 1941 अक।

93 विन्सेन्ट स्मिथ — भारत का प्रसिद्ध इतिहासकार।

94 ऋषभदेव की भरत के साथ सहजन्मा पुत्री ब्राह्मी की प्रवृज्यी।

95 आचार्य जिनसेन — आदि पुराण · 16/232.

96 कविकल्हणकृत राजतरंगिणी-कश्मीर मे जैनधर्म का प्रचार — आइने अकबरी द्वारा उसका समर्थन।

97. A Guide to Texila, Cambridge, 1960, Page 8.

98 (1) P.C. Das Gupta, Director, Archaeology, West Bengal — Article in Jain Journal Monthly, 1971 (Pb. 8-13).

(2) U.P. Shah — Jain Art.

99 A Guide to Taxila, Marshal, Calcutta, 1918, Page 72.

100 बृहत्कल्पसूत्र, रांभाश्य वृत्तिसहित विभाग 2, गाथा 997-999.

101 इतिहासकार प्रोफेसर मैरोमण।

102 धर्मयुग आदि मे जनवरी मई, 1972 मे इन नगरों के जैन मन्दिरों के चित्र छपे थे।

103. नेमीचन्द्राकार्यकृत टीका – अध्ययन 9ए पत्र 141.
104 भगवती सूत्र – 15ध39.
105 सयमराइच्च कथा – 4ध275.
106. कविकल्हणकृत राजतरंगिणी (कश्मीर का इतिहास) – सन् 1148.49 ईसवी – 1/101; 1/102; 1/103.
107. कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी (कश्मीर का इतिहास) सन् 1148.49 ईसवी – 1/101-103.
108 कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी (कश्मीर का इतिहास) – 1/106.
109 इतिहास समुच्चय – बाबू हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 18.
110 कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी – 4/202.
111 कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी – तरंग 4.
112 कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी – 4/211.
113 कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी – 4/210.
114 मेजर जरनल फरलोग का मत है कि पार्श्वनाक कश्मीर मे पधारे थे।
115 श्रीमत पुराण, अध्याय 73, श्लोक 27-30.
116 C.J. Shah — Jainism in Northern India, London, 1932.
117 मध्य एशिया और पजाब मे जैन धर्म – हीरालाल दूग्गड।
118 महामात्य वस्तुपाल एव तेजपाल द्वारा जेन धर्म प्रचार – मध्य एशिया और पजाब मे जैन धर्म – हीरालाल दुग्गड।
119 सम्राट् खारवेस द्वारा अपने राज्य के बारहवे वर्ष मे उत्तरापथ, तक्षशिला, गधार आदि पर विजय प्राप्त और सर्वत्र जैन धर्म प्रचार।
120 विमलाद्रि शत्रुंजयावतार प्रकरण तथा जैनाचार्य श्री रत्नशेखर सूरि का श्राद्ध विधि प्रकरण – मध्येशिया और पंजाब मे जैन धर्म – हीरालाल दुग्गड।
121 श्राद्ध विधि प्रकरण – जैनाचार्य श्री चन्द्रशेखर सूरि – मध्येशिया और पजाब मे जैन धर्म – हीरालाल दुग्गड।
122 महाराजा कुमारपाल सोलकी द्वारा भारत एव विदेशो मे तुर्किस्तान में जैन धर्म प्रचार – मध्य एशिया और पजाब में जैन धर्म – हीरालाल दुग्गड़।
123 महाराजा कुमारपाल सोलंकी द्वारा पश्चिम मे तथा विदेशों में व्यापक धर्म प्रचार – मध्य एशिया और पजाब मे जैन धर्म – हीरा लाल दुग्गड़।
124 पेथड़शाह द्वारा भारत एवं विदेशों में कारक धर्म प्रचार एवं मन्दिर निर्माण – कवि कल्हणकृत राजतरंगिणी एव मध्य एशिया और पंजाब मे जैन धर्म हीरालाल दुग्गड़।
125. कश्मीर नरेश, सत्यप्रतिस् अशोक महान बडा प्रतापी जैन राजा कश्मीर मे पार्श्वनाथ के लोकाल से पहले हो गया है।
126 जम्बूद्वीप प्रज्ञास्ति (स्टीक) – पूर्व भात्र 158/1, पृष्ठ में उल्लेख है कि चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने ऋषभदेव की चिता भूमि पर अष्टापद पर्वत की चोटी पर स्तूप का निर्माण कराया था।

127. जम्बू द्वीप प्रज्ञाप्ति (स्टीक) – पूर्वभाग, पृष्ठ 158/1 मे उल्लेख है कि चक्रवर्ती सम्राट भरत ने ऋषभदेव की चिताभूमि पर अष्टापद पर्वत की चोटी पर स्तूप का निर्माण कराया।
128. तिलोय पण्णत्ति (सानुवाद – चौथा महाधिकार) गाथा 844, पृष्ठ 254.
129 ज्ञाताधर्मकथांग, भगवतीसूत्र, निशीथ चूर्णि इत्यादि।
130 विशेष विवरण के लिए देखिये – Jain Stup and Other Antiquities of Mathura — Vincent A. Smith (Archeaological Survey of India, New Imperial Series, Volume 20).
131 The Sunday Standard, Hyderabad (Editors) — 18.2.1979.
132 वृषभ ऋषभदेव का, गैंडा श्रेयासनाथ का, सुअर विलनाथ का, बाज अनन्तनाथ का, साप पार्श्वनाथ का और सिंह महावीर का प्रतीक (लाछन) है। जो जैनो के क्रमशः प्रथम, ग्यारहवें, तेरहवे, चौदहवे, तेईसवे और चौबीसवे तीर्थंकरों के लाछन हैं।
133 यह बाज मन्दिर जैनो के चौदहवे तीर्थंकर अनन्तनाथ का होना चाहिये क्योकि बाज अनन्तनाथ का प्रतीक (लांछन) है।
134 युरोपीय इतिहासकार परसविन लेडन, सन् 1928.
135 "विश्व की दृष्टि मे" जेम्स फर्ग्यूसन – पृष्ठ 26 से 52.
136. History of Seria, Page 77.
137 The Hindu of 25th July, 1991 — Prof. Ramaswamy Iyangar.
138. Talk for Indian Histroy with Dr. A.P. Jain at Gwalior on 28th December 1993. Jh eku fyaxu Corns of Sevidphia और Coins of South East Asia नामक पुस्तकों के लेखक है।
139. Jay: The Original Nucleus of Mahabharat, 1979 — Ram Chandra Jain Advocate, (A World Famous Historian, Agam Kala Prakashan, Delhi, page 257.
Shri Ram Chandra Jain, Advocate Shri Ganga Nagar (Rajasthan) has written 157 books on Indian History and Jain History. Some published by Choukhamba, Varanasi; Agam Kala Prakashan, Delhi; Motilal Banarashi Dass, Delhi etc.
140 History of Mahajanpad Bharat — Ram Chandra, Jain — Arihant International, 239, Gali Kunjas, Dariba Kalan, Chandhani Chowk, Delhi-110006.
141 बम्बई समाचार (गुजराती) दिनाक 4.8.1934 अंक · मंगोलिया में जैन स्मारकों का विवरण।
142 बौद्ध चीनी यात्री हुएनसांग (686 से 712 ईसवी) के भारत भ्रमण के विवरण।
143. "लकाया पाताल-लंकाया श्री शान्तिनाथः" – सिंघी जैन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित जिनप्रभसूरि कृत "विविध तीर्थकल्प, पृष्ठ 86.